हस्तिकुण्डी का इतिहास

डॉ. सोहनलाल पटनी

हस्तिकुण्डी का इतिहास

□

लेखक :

डॉ. सोहनलाल पटनी

□

प्रकाशक :

रातामहावीर तीर्थ समिति, हस्तिकुण्डी

पो० बीजापुर, जवाई बाँध (प०रे०) राज०

- हस्तिकुण्डी का इतिहास
- लेखक –
  डॉ. सोहनलाल पटनी
- द्वितीय संस्करण, १९८३
- मूल्य : छह रुपये
- प्रकाशक –
  रातामहावीर तीर्थ समिति,
  हस्तिकुण्डी पो. बीजापुर
- मुद्रक –
  हिन्दुस्तान प्रिण्टर्स, जोधपुर.

प्राक्कथन

राजस्थान की प्राचीन नगरियों के इतिहास-लेखन में सर्वाधिक अन्याय राठौड़ों की ध्वस्त नगरी हस्तिकुण्डी (हत्थूंडी) के साथ हुआ है। परमारों की प्राचीन नगरी चन्द्रावती के बहुत लम्बे-चौड़े वर्णन हुए हैं पर राष्ट्रकूटों की इस नगरी के वैभव की गाथा कहने वाले शिलालेखों एवं प्रशस्तियों के होते हुए भी इसका नामोल्लेख मात्र ही हुआ है। प्राचीन काल के इतिहास-लेखन में मन्दसौर, प्रयाग एवं सौंधनी आदि प्रशस्तियों को पर्याप्त महत्त्व मिला पर सूर्याचार्य द्वारा लिखित एवं योगेश्वर नामक सोमपुरा द्वारा उत्कीर्णित हस्तिकुण्डी की प्रशस्ति को इतिहासकारों ने नजरअन्दाज कर दिया।

हस्तिकुण्डी का इतिहास इन्हीं प्राचीन शिलालेखों एवं (सूर्याचार्य की) प्रशस्ति पर आधारित है। हस्तिकुण्डी नगरी का एकमात्र जीवन्त स्मारक रातामहावीर का मन्दिर है अतः सारा इतिहास मन्दिर के इर्दगिर्द घूमता नजर आता है। सूर्याचार्य की इस प्रशस्ति ने राष्ट्रकूटों की सामाजिक मान्यता, सांस्कृतिक गतिविधि, राज्य, व्यापार, वन तथा कर-निर्धारण की समुचित सूचनाएँ दी हैं। इस प्रशस्ति के परिप्रेक्ष्य में राजस्थानी राजवंशों के प्राचीन इतिहास के मन्थन की आवश्यकता महसूस हुई है। इस प्रशस्ति एवं हस्तिकुण्डी के अन्य लेखों ने हस्तिकुण्डी के आसपास की राजनैतिक तथा धार्मिक गतिविधियों को अपनी शब्द-सम्पदा में समेटा है एवं नवीन मान्यताएँ तथा उद्‌भावनाएँ प्रस्तुत की हैं। एक जैन मन्दिर के साथ जुड़े दुर्लभ शिलालेख (सं. २५८ अजमेर म्युजियम) को अधिक महत्त्व नहीं मिला एवं न तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्री का समुचित अध्ययन किया गया। **हस्तिकुण्डी का इतिहास** पुस्तक राष्ट्रकूटों की ध्वस्त नगरी हस्तिकुण्डी, उसकी सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्थाओं तथा तत्कालीन परिवेश को प्रस्तुत करने का प्रयास है। राष्ट्रकूटों की इस विलुप्त कड़ी को जोड़ने का प्रयास इतिहासकारों को करना चाहिये एवं मन्दिर-क्षेत्र की अन्य सामग्री का विश्लेषण-अध्ययन करना चाहिये ताकि राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास के पृष्ठ और अधिक उजागर हो सकें।

इस छोटे से प्रयास में पूज्य गुरुदेव भद्रंकर विजयजी का प्रेरणाप्रद वरद हस्त रहा है अतः पुस्तक उन्हीं को सादर समर्पित करता हूं।

विदुषां वशंवद

स्वातन्त्र्य पर्व, 1983 **सोहनलाल पटनी**

अनुक्रम

	विषय		पृष्ठाङ्क
१.	हस्तिकुण्डी–एक परिचय	.....	१
२.	हस्तिकुण्डी की ऐतिहासिक सामग्री	.....	१०
३.	हस्तिकुण्डी के आचार्य	.....	२०
४.	हस्तिकुण्डी के राजा	.....	३७
५.	हस्तिकुण्डी का समाज	....	४२
६.	वि. सं. २००६ की प्रतिष्ठा	.....	४६
७.	आइए, मन्दिर चलें	.....	५५
८.	शिलालेख	.....	६१
	शिलालेख सं. ३१८	.....	६१
	शिलालेख सं. ३१६	.....	७६
	शिलालेख सं. ३२०	....	८७
	शिलालेख सं. ३२२	....	८८
	शिलालेख सं. ३२१	....	८८
	तीन नए शिलालेख	....	८६
६.	परिशिष्ट	....	६१–११२

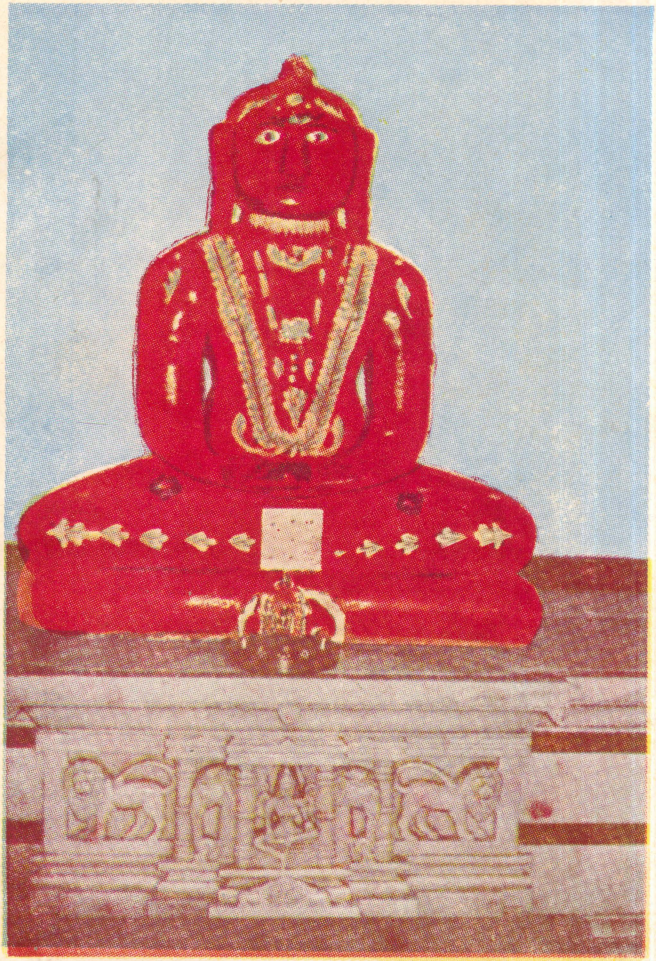

राता महावीर स्वामी

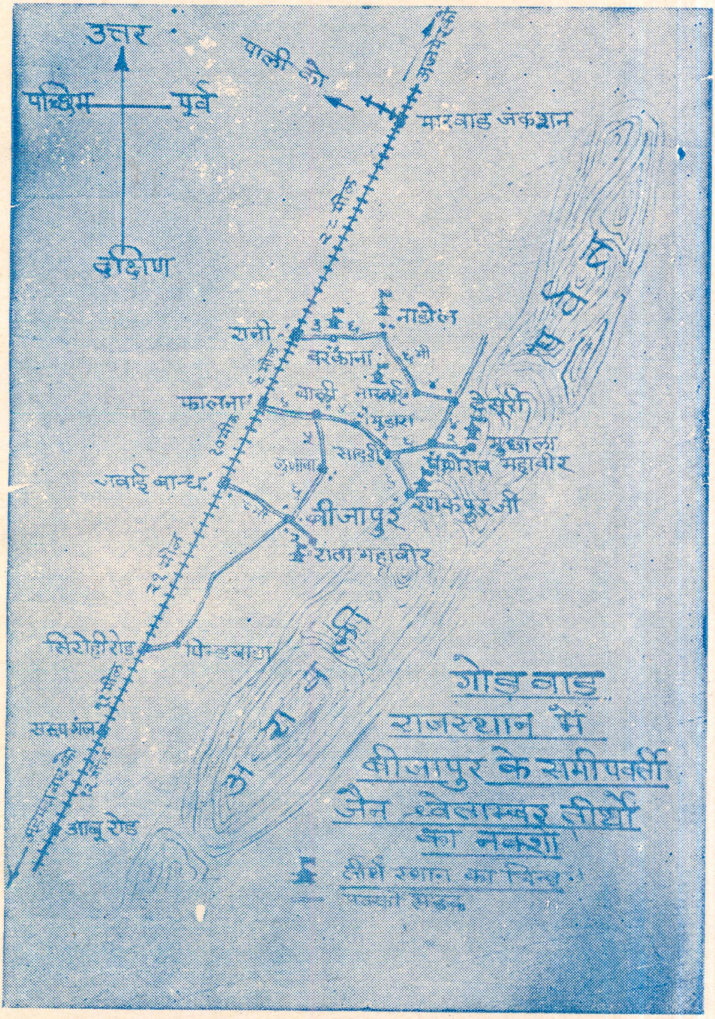

उत्तर
पश्चिम
पूर्व
दक्षिण
पाली को
मारवाड़ जंकशन
नाडोल
रानी
वरकाना
फालना
सादड़ी
जवाई बान्ध
बीजापुर
राणकपुर जी
मुछाला महावीर
देसूरी
राता महावीर
सिरोही रोड
पिन्डवाड़ा
आबू रोड
गोड़वाड़
राजस्थान में
बीजापुर के समीपवर्ती
जैन श्वेताम्बर तीर्थों
का नक्शा

हस्तिकुण्डी

एक परिचय

राता महावीरजी के नाम से विख्यात राठौड़ों की ध्वस्त हस्तिकुण्डी नगरी जवाई बाँध (पश्चिमी रेलपथ) से १४ किलोमीटर दूर स्थित बीजापुर ग्राम से सवा तीन कि. मी. की दूरी पर है। राजस्थान के धुरन्धर इतिहासवेत्ता मुनिश्री जिनविजयजी ने **प्राचीन जैन लेखसंग्रह, द्वितीय भाग** में पृष्ठ १७५ से १८५ तक हस्तिकुण्डी का वर्णन करते हुए इसके मन्दिर व शिलालेख को राजस्थान के ५५६ जैन मन्दिरों के शिलालेखों में सबसे प्राचीन माना है। यह हस्तिकुण्डी नगरी राष्ट्रकूटों की राजधानी थी। इस नगरी के दो नाम प्रचलित हैं—हस्तिकुण्डी तथा हस्तितुण्डी। प्राकृत भाषा में कु एवं तु दोनों का उ हो जाता है और हस्ति का हत्थी अर्थात् हत्थीउण्डी = हथूंडी। इस उजड़ी नगरी का वर्तमान में यही नाम है। नगरी का एक मात्र वैभव राता महावीर का मन्दिर है जो अपने शिलालेखों से नगरी का विगत वैभव कहता है।

शिलालेख में इस नगरी का नाम 'हस्तिकुण्डिका' भी दिया हुआ है जिसका तात्पर्य है हाथियों से भरी हुई नगरी। उस काल में इस नगरी में हाथियों की भारी धकापेल रही

होगी जिसके कारण इसका नाम हस्तिकुण्डी रख दिया गया होगा। शायद हस्तिसेना के बल पर ही यहाँ के राठौड़ दूर-दूर तक मार करते थे। हस्तितुण्डी का अर्थ है हाथी का मुख। हथूंडी के राता महावीरजी की प्रतिमा के नीचे जो सिंह का लांछन अंकित है उसका मुख हाथी का है। शायद यही विशेषता इस नगरी की प्रसिद्धि का कारण रही हो और इसका नाम हस्तितुण्डी पड़ा हो।[1]

अरावली की उपत्यका में स्थित यह हस्तिकुण्डी राणकपुर से केवल २८ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। **श्री पार्श्वनाथ भगवान की परम्परा का इतिहास (पूर्वार्द्ध)** में इतिहासविद् मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज ने पृष्ठ ८०६ पर लिखा है कि विक्रमी संवत् ३६० में श्री पार्श्वनाथ भगवान के ३०वें पाट पर आचार्य श्री सिद्धसूरि प्रतिष्ठित हुए। आचार्य-देव के सदुपदेश से श्रेष्ठी गोत्र के वीरदेव ने महावीर भगवान का एक भव्य जिनालय निर्मित करवाया एवं आचार्यदेव ने उसकी प्रतिष्ठा की। भगवान पार्श्वनाथ का समय ८१७ ई. पू. माना जाता है। उनको पाट-परम्परा में ३०वें आचार्य लगभग इसी समय हुए होंगे। तब यह प्रदेश मालव गणराज्य के अन्तर्गत था। कुषाण साम्राज्य के पतन के काल में यह मालव गणराज्य अजमेर से चित्तौड़ तक फैला हुआ था। समुद्रगुप्त की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत होकर इस गण ने गुप्तों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। स्कन्दगुप्त के पश्चात् हूणों से युद्ध के कारण गुप्तों की शक्ति का ह्रास हो गया एवं इन

1. राठौड़ों की सेना की अग्रपंक्ति में हाथी रहते थे। सेना का यह अंग इन्हें बहुत प्रिय था।

प्रदेशों में हूणों का फैलाव हो गया। हूण राजा तोरमाण के साम्राज्य के अन्तर्गत सिंध, पंजाब, राजस्थान और मध्य भारत का दक्षिणी प्रदेश मालवा था। हूणों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने वाला मालवा का यशोधर्मन् था जिसने ५८५ विक्रमी में मुलतान के समीप हूणों के नेता मिहिरकुल को परास्त कर देश से खदेड़ दिया। ये हूण सूर्य के उपासक थे। हूण राजा तोरमाण तथा मिहिरकुल जैनधर्म के प्रेमी थे। आचार्य कालक तथा आचार्य हरिगुप्तसूरि को वे गुरु रूप में मानते थे। यशोधर्मन् की दिग्विजयों का वर्णन मन्दसौर के समीप सौंधनी ग्राम में पाषाण के दो विशाल स्तम्भों पर उत्कीर्ण है। इस प्रशस्ति में उल्लिखित है कि इस राजा के चरणों में ब्रह्मपुत्र से लेकर महेन्द्रपर्वत तथा गंगा और हिमालय से लेकर पश्चिमी समुद्रतट तक के प्रदेशों के सामन्त लोटते थे। इससे सिद्ध होता है कि छठी शताब्दी में इस प्रदेश पर यशोधर्मन् का राज्य था। उसकी मृत्यु के पश्चात् मालवा फिर गुप्त सम्राटों के अधीन हो गया। गुप्तों के पश्चात् यह प्रदेश सम्राट् हर्षवर्द्धन के साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया, पर शासन चित्तौड़ से ही होता रहा होगा। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के उपरान्त इस प्रदेश पर प्रतिहार राज्य करते थे। ८१३ वि. में प्रतिहार राजा नागभट्ट ने गुजरात और मंडोर तक अपना राज्य विस्तृत किया। बाद में प्रतिहारों की एक शाखा ने मालवा में अपना राज्य स्थापित किया। प्रतिहार राजा यशोवर्मा को वि. सं. ८६० के लगभग तीसरे गोविन्दराज ने पराजित कर गुजरात पर अधिकार जमा लिया।

इस क्षेत्र पर राष्ट्रकूटों का राज्य गोविन्दराज तृतीय के युग में हुआ होगा। गोविन्दराज दक्षिण से उत्तर भारत में

आया था। इसके आक्रमण का उल्लेख राधनपुर के दानपत्र में उपलब्ध है। उसके पुत्र अमोघवर्ष ने उक्त दानपत्र में गोविन्दराज तृतीय को केरल, मालवा, सौराष्ट्र एवं चित्रकूट का विजेता बताया है। बुल्हर के अनुसार गोविन्दराज ने भीनमाल से मालवा जाते हुए कुम्भलगढ़ का मार्ग जीत लिया था। हस्तिकुण्डी का हरिवर्मा शायद गोविन्दराज के पुत्र अमोघवर्ष का सामन्त रहा होगा जिसे यहाँ मालवा के परमारों एवं गुजरात के सोलंकियों पर चौकसी रखने के लिये नियुक्त किया गया होगा। मेवाड़ के धनोप गाँव में भी राष्ट्रकूटों के लेख मिले हैं। राष्ट्रकूट राजाओं ने पश्चिमी राजस्थान का दिग्विजय किया था। हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट शायद उन्हीं के वंशज थे। **चौहानकुलकल्पद्रुम** में न्यायरत्न लल्लुभाई भीमभाई देसाई ने लिखा है कि आबू भी राठौड़ों के अधीन था। खाँप के कवि आढ़ा ने एक छप्पय में कहा है—

आदपाट अरबद प्रथम राठौर परट्ठे।
ता पाछे गोहिल बनसे वरस वयट्ठे।

१००० वि. में सांभर के लाखणसी चौहान ने नाडौल में एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। तब से चौहानों और हस्तिकुण्डी के राठौड़ों में झड़पें होती रही होंगी। इस बीच १०८० वि. का महमूद गजनवी का नाडौल के चोहानों से युद्ध भी इस प्रदेश के उजड़ने का कारण रहा होगा।

सं. १०८० वि. (सन् १०२३ ई.) में महमूद गजनवी ने नाडौल के रामपाल चौहान व हस्तिकुण्डी के दत्तवर्मा राठौड़ से सोमनाथ जाते हुए युद्ध किया। इस युद्ध में ये दोनों राजा

पराजित हुए । गजनवी ने इन दोनों नगरों को उजाड़ दिया । ऐसी स्थिति में नगरी भी आक्रमण के प्रभाव से अछूती नहीं बची होगी ।

११६७ वि. के. सेवाड़ी के शिलालेख में इस प्रदेश को चौहानों का राज्य बताया गया है और उसमें आसराव के पुत्र युवराज कटुक का वर्णन है । सेवाड़ी बीजापुर से केवल छह मील दूर है । हो सकता है तब तक यह प्रदेश चौहानों से शासित होता रहा हो । बालीसा चौहानों के बड़ुओं की वहियों से मालूम होता है कि इस नगरी या ग्राम का अन्तिम शासक सींगा हतुड़िया राठौड़ था । उसको वि. सं. १०३२ में वरसिंह चौहान ने मार डाला और उसने बेड़ा के ४२ गाँवों के परगने पर कब्जा कर लिया । परन्तु यह तथ्य जिस दोहे पर आधारित है, उसका भ्रान्त अर्थ किया गया है । दोहा इस प्रकार है :–

बर वे लीधो वांकड़े, बाहाँ बल बालीस ।
सींगो कमधज साजियो, बारासें बत्तीस ।।

इस दोहे का अर्थ अभी तक इस प्रकार होता रहा कि बालीसा चौहान वरसिंह ने अपने भुजबल से यह प्रदेश सिंहाजी राठौड़ को मार कर हथिया लिया । इस अर्थ को मानने वालों के अनुसार हस्तिकुण्डी के राठौड़ों का वंश सिंहाजी राठौड़ के बाद समाप्त हो गया । इस दोहे पर एवं सिंहाजी के पाली पर आक्रमण करने के समय पर विचार किया जाय तो इस दोहे का अर्थ इस प्रकार होगा—"सिंहाजी राठौड़ ने सं. १२३२ में सुसज्जित होकर अपने बाहुबल से वरसिंह बालीसा चौहान से युद्ध किया एवं अपनी विजययात्रा प्रारम्भ की ।" इन

सिहाजी ने बालीसा चौहानों को अपना सामन्त बना कर अपने राज्य को आगे बढ़ाने हेतु प्रस्थान किया। सिहाजी के मारवाड़ आने का उल्लेख श्रीयुत विश्वेश्वरनाथजी रेउ ने अपनी पुस्तक **ग्लोरीज ऑफ मारवाड़** एण्ड **ग्लोरीज ऑफ राठौड़** में किया है। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि हस्तिकुण्डी के राठौड़ों के मात्र चार नाम हरिवर्मा, विदग्धराज, मम्मट एवं धवलराज ही इतिहास में आलोकित होकर समाप्त हो जाते हैं। परन्तु हस्तिकुण्डी के शिलालेखों में एक पाँचवाँ नाम बालाप्रसाद का भी मिलता है। यह बालाप्रसाद धवलराज राठौड़ का पुत्र था। धवलराज का समय १०५३ विक्रमी है। हस्तिकुण्डी के राठौड़ों की लुप्त कड़ी में एक छठा नाम दत्तवर्मा राठौड़ का भी है जिसने संवत् १०८० विक्रमी (सन् १०२३ ई.) में नाडौल के रामपाल चौहान से मिल कर सोमनाथ जाते हुए महमूद गजनवी से युद्ध किया था। हस्तिकुण्डी के इन राठौड़ों की लुप्त कड़ी बालीसा चौहानों की बड़ुओं की बही से जुड़ जाती है जहाँ हमें एक सातवाँ नाम सींगा कमधज का (सिहाजी राठौड़) मिलता है। शायद रेउजी कन्नौज के राष्ट्रकूटों की गौरवपूर्ण परम्परा से मारवाड़ के शासकों को जोड़ने के लिए सिहाजी को राठौड़ वरदाई सेन (हरिश्चन्द्र का पुत्र) बता कर उन्हें मारवाड़ लाये। परन्तु ये सिहाजी हस्तिकुण्डी के राठौड़ों की परम्परा के थे न कि कन्नौज के। पाली कन्नौज से नहीं किन्तु हस्तिकुण्डी से नजदीक पड़ती है। पाली में सिहाजी की वीरता की धाक पहले ही पहुँच चुकी थी इसलिए जर्जर शासन से त्रस्त पाली की जनता ने उनका स्वागत किया और बिना युद्ध के पाली पर सिहाजी का अधिकार हो गया। इस सम्बन्ध में एक पुराना दोहा प्रसिद्ध है :–

आटो खाधो ईलिए, घर खांधा गोले ।
पाली गई प्रेम सूँ, बाजंतां ढोले ।।

अर्थात् ईलिया-ईली (गेहूं का कीड़ा) जिस प्रकार अन्दर ही अन्दर गेहूं के तत्त्व – आटे को खा जाती है, वैसे ही पाली के राजघराने की शक्ति को चाटुकारों ने समाप्त कर दिया एवं पाली बिना किसी विरोध के ढोल-ढमाके के स्वागत के साथ प्रेम से विजेता के अधिकार में चली गयी । यदि इस तथ्य पर खोज हो तो हस्तिकुण्डी को मारवाड़ का वीर वंश देने का गौरव प्राप्त हो जायेगा ।

वरसिंह चौहान, सिंहाजी के सामन्त थे । इस समय तक सिंहाजी एक बड़े इलाके के स्वामी बन गये थे एवं उनकी वीरता की धाक जम गई थी । वरसिंह चौहान के समय से यह प्रदेश बेड़ा के परगने में सम्मिलित हो गया था । इसकी पुष्टि हस्तिकुण्डी के शिलालेख संख्या ३२२ से होती है जो सं. १३४६ विक्रमी का है । इसमें बेड़ा के राव कर्मसिंह का उल्लेख है जो शायद वरसिंह के वंशज होंगे । ये कर्मसिंह मेवाड़ के सिसोदिया राणा रुद्रसिंह व उनके पुत्र लाखा से लड़े थे । बाद में वे मुसलमानों से युद्ध करते हुए मारे गये ।

वरसिंह चौहान के समय से यह प्रदेश चौहानों द्वारा शासित हो गया था । वरसिंह के पुत्र रामसिंह ने महमूद नाम के एक शासक को पराजित कर 'सींगारा चौहान' का विरुद प्राप्त किया था । रामसिंह के पुत्र रूपसिंह, उदयसिंह आदि शासकों ने इस प्रदेश पर राज्य किया । उदयसिंहजी के समय में मुञ्जसिंह चौहान (मुञ्जा बालिया) इस प्रदेश के वीर पुरुष

थे। वे सेवाड़ी की नाल में कंटालिया दुर्ग में रहते थे। इनकी माता राव कांधलजी की पुत्री चावड़ी जी थी। कांधलजी अलाउद्दीन खिलजी से युद्ध करते हुए जालोर में मारे गये थे। मुञ्जाजी के पहले और बाद में भी इस इलाके को मेवाड़ के शासकों ने अपने राज्य में मिलाना चाहा था और इन झड़पों में मुञ्जाजी के काका आसकरण मारे गये थे। अलाउद्दीन खिलजी ने अब चित्तौड़ पर कब्जा कर लिया था और सिसोदिया राणा लक्ष्मणसिंह के पुत्र अजयसिंह को देलवाड़ा में शरण लेने को मजबूर होना पड़ा था। अपने काका आसकरण की मृत्यु का बदला लेने के लिए मुञ्जाजी बालिया ने इन्हीं अजयसिंह की रानी से कर रूप में एक पाँव का तोड़ा लिया था। राणा अजयसिंह पर इस विजय के उपलक्ष में मुञ्जाजी का एक कीर्ति-स्मारक बनवाया गया था जो आज भी वर्तमान बीजापुर की पुलिस चौकी के पास स्थित है। उनके द्वारा निर्मित मुंजेला तालाब आज भी इस गांव में विद्यमान है।

मुञ्जसिंह चौहान से चौथी पीढ़ी पर सांगा नाम के एक वीर पुरुष हुए। उनके नाम से इनका वंश सिंगणोत बालीसा चौहान कहलाया। तब से यह प्रदेश इन चौहानों द्वारा शासित रहा है। गौड़वाड़ में बीजापुर इनका मुख्य स्थान रहा है।

हस्तिकुण्डी नगरी आज नहीं है परन्तु एक मन्दिर और उसकी प्रशस्ति के लेख आज भी उसकी गौरवगाथा का बखान करते हैं। इस विशाल नगरी का कोट अरावली पर्वत की गिरिमाला में हथूंडी से गढ़मुक्तेश्वर एवं हरगंगा के मन्दिर तक आज भी टूटी-फूटी अवस्था में विद्यमान है। "आठ कुआ नव बावड़ी, सोलहसो पणिहार" अर्थात् आठ कुएं, नौ बाव-

ड़ियाँ एवं सोलह सौ पणिहारियाँ-यह उल्लेख चौदहवीं शताब्दी का है। यह प्राचीन नगरी और उसका वैभव दोनों ही आज दिखाई नहीं देते पर संगमरमर की आठ बावड़ियाँ मन्दिर के कोटद्वार के बाहर आधी भूमिगत एवं आधी बाहर आज भी दिखाई देती हैं। मन्दिर के आसपास भूमि पर अब खेती प्रारम्भ हो गई है एवं पुराने अवशेषों को या तो दबा दिया गया है अथवा उखाड़ कर फेंक दिया गया है पर पंचतीर्थेश्वर महादेव का विशाल मन्दिर आज भी खण्डहर के रूप में खड़ा है जिसके आरस के पत्थर काल की क्रूरता से काले पड़ गये हैं। अरक्षितता के कारण लोग यहाँ की सामग्री उठा कर ले गये हैं। इसमें केवल एक शिलालेख दरवाजे की चौखट पर है जो पढ़ने में नहीं आता। समूचे क्षेत्र में खण्डहर ही खण्डहर दिखाई देते हैं। $1\frac{1}{2} \times 1$ फुट की 3 इंच मोटी विशाल ईंटें एवं स्थान-स्थान पर पत्थरों की चौड़ी नीवें नगरी की विशालता का परिचय देती हैं। मन्दिर के आस-पास के क्षेत्र में जब भी कोई खुदाई होती है तो मूर्तियाँ और उनके अवशेष धरती के गर्भ से झांकते दिखाई देते हैं। पहाड़ी पर थोड़ी ऊंचाई पर स्थित दुर्ग एवं महलों के खण्डहर हैं, जिनकी दीवारें खड़ी मूक रुदन करती हैं। बरसात में बहते रहने वाले पहाड़ी झरनों ने बहुत से अवशेषों को मिटा दिया है या बहा कर नदी में फेंक दिया है जिन्हें कलाप्रेमी उठा कर ले गये हैं। राष्ट्रकूटों के वैभव, उनकी राज्य-व्यवस्था, कर-निर्धारण एवं अर्थसम्पदा की गाथा कहने वाला मन्दिर का वह शिलालेख है जो अजमेर के म्यूजियम में पड़ा हुआ है। भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग को इस क्षेत्र में नगरी के अवशेषों की खुदाई करवानी चाहिए ताकि परमारों की ध्वस्त नगरी चन्द्रावती के वैभव की तरह राठौड़ों की इस नगरी का वैभव भी उजागर हो सके। ◆

हस्तिकुण्डी
की
ऐतिहासिक सामग्री

हस्तिकुण्डी नगरी के मन्दिर में से निम्नलिखित शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो **प्राचीन जैन लेखसंग्रह, भाग दो** (मुनि जिनविजयजी) में शिलालेख सं. ३१८, ३१९, ३२०, ३२२, ३२३ हैं।[1]

शिलालेख सं. ३१८ व ३१९ समस्या

विक्रमी संवत् १०५३, माघ शुक्ला त्रयोदशी रविवार का यह शिलालेख मन्दिर के प्रवेश-द्वार के बाईं ओर एक शिलाखण्ड पर खुदा हुआ था। इसे प्रोफेसर कीलहार्न, कैप्टेन वर्ट एवं पं. रामकरण आसोपा ने उखड़वा कर पुरातत्त्व विभाग को सौंप दिया था जो आज भी अजमेर के पुरातत्त्व विभाग में संगृहीत है[2]। यह शिलालेख २२ पंक्तियों में उत्कीर्ण है। लेख की चौड़ाई २ फुट ८॥ इंच एवं ऊँचाई

---

1. शिलालेख संख्या ३१८ व ३१९ एपिग्राफिका इंडिया के १० वें भाग में पृष्ठ संख्या १९ २० पर भी संकलित हैं।
2. शिलालेख संख्या २५८ अजमेर संग्रहालय।

१ फुट ४ इंच है। इसी शिलाखण्ड पर वि. सं. १०५३ के उक्त शिलालेख की २२ पंक्तियों के नीचे १० पंक्तियों का ९९६ विक्रमी की माघ कृष्णा ११ का एक और शिलालेख है अर्थात् इस शिलाखण्ड पर कुल ३२ पंक्तियां उत्कीर्ण हैं जो नागरी-लिपि में हैं। २२ वीं और २३ वीं पंक्तियों के थोड़े से भाग के अतिरिक्त दोनों लेख संस्कृत भाषा में हैं। पहला लेख ४० पद्यों में पूरा हुआ है और दूसरा लेख २१ श्लोकों में है। काल की अधिकता एवं अरक्षितता के कारण लेख के बहुत से अक्षर घिस गए हैं।

प्रश्न यह उठता है कि १०५३ विक्रमी का शिलालेख पहले व ९९६ विक्रमी का शिलालेख बाद में क्यों लिखा गया? मान्यता यह रही है कि शायद दूसरा लेख किसी दूसरे शिला-खण्ड पर रहा होगा पर १०५३ विक्रमी के शिलालेख के समय तक जीर्ण होने या टूट-फूट जाने के कारण उसे भी इसी के साथ उत्कीर्ण कर दिया गया होगा, ऐसा आज भी मन्दिरों के जीर्णोद्धार के समय होता है। इन दोनों का पद्यानुवाद तो बाद में प्रस्तुत होगा पर पहले इन दोनों में उल्लिखित परस्पर विरोधी कथनों पर विचार कर लें। वि. सं. १०५३ के शिलालेख में इस मन्दिर को भगवान ऋषभदेव का मन्दिर बताया गया है–

संवत् १०५३ माघ शुक्ल १३ रविदिने पुष्यनक्षत्रे श्रीऋषभनाथदेवस्य प्रतिष्ठा कृता महाध्वजश्च रोपितः।

अर्थात्–संवत् १०५३ माघ सुदी १३ रविवार को पुष्यनक्षत्र में श्री ऋषभनाथदेव की प्रतिष्ठा की एवं महाध्वज का आरोपण किया।

इसी शिलालेख के ३६वें श्लोक से मन्दिर के मूलनायक के प्रश्न पर कुछ प्रकाश पड़ता है—

विदग्धनृपकारिते जिनगृहेऽतिजीर्णे,
पुनः समं कृतसमुद्धृताविह भवां(बु)धिरात्मनः ।
अतिष्ठिपत् सोऽप्यथ प्रथमतीर्थनाथाकृतिं,
स्वकीर्त्तिमिव मूर्त्ततामुपगतां सितांशुद्युतिम् ।।३६।।

विदग्ध राजा के द्वारा निर्मित जिनमन्दिर के अति जीर्ण होने पर संसार-सागर से अपने उद्धार के लिये धवल ने भी अपनी कीर्ति को उजागर करने हेतु चन्द्र सदृश निर्मल किरणों वाली प्रथम तीर्थनाथ भगवान आदिनाथ की मूर्ति की स्थापना की । (अतिष्ठिपत्)

यह तो हुई १०५३ वि. की बात । अब ९७३ विक्रमी की बात करें । १०५३ वि. में तो निश्चित रूप से इस मन्दिर में ऋषभदेव भगवान की मूर्ति की मूलनायक के रूप में प्रतिष्ठा हुई थी पर ९७३ विक्रमी में मूलनायक कौन थे ? इस विषय पर प्रकाश डालने वाला ३३ वां श्लोक इस प्रकार है–

तदीय वचनान्निजं धनकलत्रपुत्रादिकं,
विलोक्य सकलं चलं दलमिवानिलांदोलितम् ।
गरिष्ठगुणगोष्ठ्यदः समुददीधरद्धीरधी-
रुदारमतिसुन्दरं प्रथमतीर्थकृन्मन्दिरम् ।।३३।। शि. सं.३१८

उक्त श्लोक से दो बातों पर प्रकाश पड़ता है, प्रथम तो यह श्लोक उन इतिहासकारों की मान्यता को चुनौती देता है जो यह कहते हैं कि मन्दिर विदग्धराज ने ९७३ वि. में बनवाया । श्लोक कहता है कि उसका जीर्णोद्धार हुआ और मूलनायक ऋषभदेव भगवान ही थे अर्थात् वासुदेवाचार्य ने जिस

जीर्ण मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया वह ऋषभदेव भगवान का ही था। इस बात की पुष्टि श्लोक सं. ३६ शिलालेख सं. ३१८ भी करता है **विदग्धनृपकारिते।** 'कारित' का अर्थ करवाई याने प्रतिष्ठा करवाई न कि मंदिर बनवाया। अभिप्राय यह हुआ कि मंदिर ९७३ में जीर्ण हो गया था क्योंकि मंदिर का निर्माण तो पार्श्वनाथ के तीसवें पट्टधर सिद्धसूरि के उपदेश से श्रावक वीरदेव ने सं. ३६० विक्रमी में करवाया था।

मेरी मान्यता यह है कि यह शिलालेख १०५३ वि. का है एवं उस वर्ष जो प्रतिष्ठा हुई है उसमें ऋषभदेव भगवान की पुरातन प्रतिमा को ही पुनः स्थापित किया गया है। अतः विदग्धराज ने ही ऋषभदेव भगवान की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी। ८० वर्ष बाद पुनः प्रतिष्ठा स्थापना करवाने की क्या आवश्यकता पड़ी ? इन ८० वर्षों का समय तो हस्तिकुण्डी के राठौड़ों के उत्कर्ष का था। अतः मंदिर को कोई आंच भी नहीं आ सकती थी फिर इस श्लोक सं. ३३ में केवल ऋषभदेव भगवान की मूर्ति की मूलनायक के रूप में प्रतिष्ठा कराने का वर्णन है। उस समय लिखी प्रशस्ति में विदग्धराज द्वारा जीर्णोद्धार कराए गए महावीर मंदिर में प्रथम बार ऋषभदेव भगवान की मूर्ति की स्थापना की गई थी। **उदारमतिसुन्दरं प्रथमतीर्थकृन्मन्दिरम्** पंक्ति भी इस तथ्य की पुष्टि करती है। यदि विदग्धराज द्वारा जीर्णोद्धार कराया हुआ मंदिर बहुत सुंदर और उत्तम होता तो फिर श्लोक सं. ३६ में **जिनगृहेऽतिजीर्णे** पंक्ति में मंदिर को जीर्णशीर्ण क्यों बताया गया है ? इन ८० वर्षों में न तो कोई हमला हस्तिकुण्डी पर हुआ और न कोई दूसरी आफत आई। अतः ये परस्पर विरोधी पंक्तियाँ यह

बताती हैं कि १०५३ वि. में धवल राठौड़ ने जो बहुत बढ़िया जीर्णोद्धार करवाया उससे मन्दिर सुन्दर बन गया और उस समय की प्रशस्ति लिखने वाले सूर्याचार्य ने पुनः प्रतिष्ठा के पहले के मंदिर को अतिजीर्ण कह दिया क्योंकि मंदिर तो पुराना था ही।

विदग्धराज द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति ऋषभदेव भगवान की ही थी। ३६० वि. के बाद विदग्धराज ने पहली बार मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था एवं महावीर की पुरानी मूर्ति के स्थान पर ऋषभदेव की मूर्ति की स्थापना की थी। इस लम्बे अन्तराल के बाद मूलनायक की मूर्ति परिवर्तित करने का कोई प्रबल कारण रहा होगा। १०५३ वि. में धवल राठौड़ ने शिलालेख के नीचे मूलनायक का पुनः नाम लिखा। उन्होंने विदग्धराज की, मंदिर के लिए दी गई एवं उनके पुत्र मम्मट द्वारा समर्थित राजाज्ञा को कायम रखने के लिए पुनः दुहराया, तो यह स्पष्ट हुआ कि यह मन्दिर पूर्व में महावीर भगवान का ही था।

वि. सं. ९९६ के शिलालेख के अनुसार **ऐतिहासिक रास-संग्रह भाग दो** (विजयधर्मसूरिजी विरचित) में इसे महावीर भगवान का चैत्य कहा गया है। इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि ३६० वि. में प्रतिष्ठित मूलनायक महावीर भगवान ही थे। प्रथम श्लोक में केवल **जिनेन्द्रवरशासनं जयति** ही लिखा गया है। फिर उसमें राठौड़ राजाओं की वंशावली दी गई है एवं यह संकेत दिया गया है कि श्री बलभद्राचार्य गुरु के लिए विदग्धराज ने जो जनमनोहर चैत्यगृह हस्तिकुण्डी में बनाया है उसके संभरण की जो व्यवस्था की है उसे मैं मम्मट अनुमोदित करता हूँ।

श्रीमद्वलभद्रगुरोर्विदग्धराजेन दत्तमिदं ।।१९।।
नवसु शतेषु गतेषु तु षण्णवतीसमधिकेषु माघस्य ।
कृष्णैकादश्यामिह समर्थितं मम्मटनृपेण ।।२०।।

वि.सं. ९९६ के शिलालेख में विदग्धराज की आज्ञा प्रसारित करने का संवत् ९७३ बताया गया है एवं विदग्धराज के पुत्र मम्मट के समर्थन का संवत् ९९६ लिखा गया है। वस्तुतः ये ९७३ व ९९६ वि. के शिलालेख विदग्धराज के पौत्र एवं मम्मट के पुत्र धवल द्वारा ही पुरानी यादों को ताजा करने के लिये उत्कीर्ण करवाये गये हैं।

धवलराज के यह शिलालेख उत्कीर्ण करवाने से पूर्व विदग्धराज की यह राजाज्ञा एवं उसके पुत्र मम्मट का समर्थन शायद भूर्जपत्र अथवा ताम्रपत्रों पर ही रहा होगा। यदि ऐसा नहीं होता तो इस शिलालेख में दो संवतों का उल्लेख नहीं होता और मूलनायक बदलने के प्रमाण स्वरूप **प्रथमतीर्थनाथाकृतिं अतिष्ठिपत्** का प्रयोग नहीं होता।

इदं चाक्षयधर्म्मसाधनं शासनं श्रीविदग्धराजेन दत्तं संवत् ९७३।। श्री मम्मटराजेन समर्थितं संवत् ९९६।।

अर्थात् यह अक्षय धर्म साधन व आज्ञा श्री विदग्धराज ने दी है। सं. ९७३। श्री मम्मटराज ने समर्थन किया संवत्९९६।

वि.सं. १०५३ के शिलालेख को उत्कीर्ण करने वाला योगेश्वर नाम का सोमपुरा था। दोनों प्रशस्तियों के कवि भी एक नहीं, क्योंकि दोनों की भाषा एक-सी नहीं है। १०५३ विक्रमी में भगवान ऋषभदेव के बिम्ब की प्रतिष्ठा के समय

मूलनायक को विराजमान करने वाले श्रावक नाहक, जिंद, जश, शंप, पूरभद्र एवं नाग आदि थे। १०५३ विक्रमी में पुनः जीर्णोद्धार हुआ एवं पुनः प्रतिष्ठा की गई। यह पुनः प्रतिष्ठा भी ऋषभदेव भगवान की मूर्ति की ही थी। इससे पूर्व यह महावीर भगवान का मन्दिर था जो बहुत जीर्ण हो गया था।

विदग्धनृपकारिते जिनगृहेऽतिजीर्णे

.....

शान्त्याचार्यैस्त्रिपंचाशे सहस्रे शारदामियं (१०५३)
माघशुक्लत्रयोदश्यां सुप्रतिष्ठैः प्रतिष्ठिता ।।

शिलालेख सं० ३१८, १०५३ विक्रमी

विदग्धराज द्वारा प्रतिष्ठित जिनमन्दिर के अति जीर्ण होने पर १०५३ विक्रमी में शान्त्याचार्य नाम के आचार्य ने माघ सुदी १३ को इसकी प्रतिष्ठा की। जीर्णोद्धार करवाने वाले ये आचार्य हस्तिकुण्डीगच्छ के वासुदेवसूरि (बलिभद्र सूरि) के शिष्य अथवा प्रशिष्य थे। ९९६ विक्रमी का शिलालेख वस्तुतः ९९६ विक्रमी को श्री मम्मट की एवं ९७३ विक्रमी की श्री विदग्धराज की राजाज्ञाएँ ही हैं जिन्हें प्रतिष्ठा के समकालीन धवल ने अपने पूर्वजों को याद करने एवं मन्दिर के संभरण हेतु पुनः नवीनीकृत कर १०५३ विक्रमी में नये सिरे से खुदवाया। विक्रमी सं. ९७३ के पहले यह मन्दिर महावीर भगवान का ही था पर बहुत से इतिहासकार ज्ञानसुन्दरजी महाराज की इस बात को इतिहाससम्मत नहीं मानते; किंवदन्तियों पर आधृत मानते हैं। मैं यह निर्विवाद कहता हूँ कि किंवदन्तियों की कोख से भी इतिहास के कीमती तथ्य निकले हैं एवं जनश्रुतियों ने इतिहास के निर्माण में बराबर योग दिया है।

सं० १०५३ वि. का शिलालेख

खुदाई में प्राप्त कलाकृतियों के नमूने

सभी 'तीर्थमालाओं' में इस मन्दिर को महावीर का मन्दिर कहा गया है एवं १३वीं शताब्दी से अद्यावधि प्राप्त सभी 'तीर्थ-मालाओं' में ये ही तथ्य प्राप्त होते हैं कि यह मन्दिर राता महावीर (लालवर्ण) का था—

रातो वीर पुरि मननी आस ।

अर्थात् लाल वर्ण के महावीर मेरे मन की आशा पूरी करें .. शीलविजय ।

जिनतिलकसूरि जी ने अपनी **तीर्थमाला** में हथूंडी में महावीर भगवान के मन्दिर का उल्लेख किया है ।

लावण्यसमयजी (संवत् १५२१-१५९०) ने विक्रमी संवत् १५८९ में **बलिभद्र (वासुदेवसूरि) रास** में लिखा है :—

हस्तिकुण्डी एहवउ अभिधान थापिऊ
गच्छपति प्रगट प्रधान. १२०
महावीर केरइ प्रासादि वाजइ भूंगल भेरी नाद ।।

अर्थात् गच्छपति वासुदेवाचार्य (बलिभद्रसूरि) ने विदग्धराज के समय हस्तिकुण्डी तीर्थ की स्थापना की थी । उसी हस्तिकुण्डी के महावीर मन्दिर में आज गाजे-बाजे के साथ उत्सव हुआ है । **हस्तिकुण्डी एहवउ अभिधान थापिऊ** का अर्थ यह नहीं है कि हस्तिकुण्डी में भगवान महावीर का मन्दिर बनाया; इसका अर्थ है हस्तिकुण्डी ऐसा नाम रखा । यह मन्दिर उस समय महावीर का था तभी तो केवल उत्सव का ही वर्णन हुआ है कि महावीर के मन्दिर में भूंगल-भेरी नाद हो रहा है ।

लावण्यसमयजी एवं शीलविजयजी आदि आचार्यों की **तीर्थमालाएं** किसी सुदृढ़ आधार पर लिखी गई हैं। मेरी यह मान्यता है कि १२वीं सदी के बाद इस आदिनाथ मन्दिर में पुनः महावीर भगवान की लाल वर्ण की प्रतिमा प्रतिष्ठित कर दी गई होगी। मूर्ति को बदलने के कई कारण हो सकते हैं। राष्ट्रकूटों को निरन्तर आक्रमणकारियों से लड़ना पड़ा एवं इन लड़ाइयों में नगरी टूट गई। नगरी के साथ मन्दिर की रक्षा भी कठिन हो गई होगी। इसलिए प्रतिमा को यहाँ से हटा दिया होगा।

यहाँ यह लिखना अप्रासंगिक नहीं होगा कि सं. १३२५ की फाल्गुन सुदी ८, गुरुवार को वासुदेवाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित ऋषभदेव भगवान की एक मूर्ति उदयपुर के निकट बाबेला के मन्दिर में प्रतिष्ठित की गई है। ये वासुदेवाचार्य हस्तिकुण्डीगच्छ के ही हैं। मेरे मत से किसी कारण इन्हीं गच्छपति वासुदेवाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित ऋषभदेव भगवान की प्रतिमा को बाबेला में प्रतिष्ठित किया गया एवं हस्तिकुण्डी में महावीर भगवान की रक्त वर्ण की मूर्ति की पुनः स्थापना की गई होगी। यह मूर्ति बाबेला के मन्दिर में आज भी मौजूद है। उसके बाद के सं. १३३५ वि. के शिलालेख में इस मन्दिर के लिए रातामहावीरजी के नाम का उल्लेख हुआ है। यह मान्यता निराधार है कि सं. १०५३ में किसी अन्य मन्दिर से ऋषभदेव भगवान की मूर्ति इस मन्दिर में प्रतिष्ठित कर दी गई हो। यह मूर्ति नयी ही स्थापित की गई थी एवं पुनः महावीर की इस मूर्ति की स्थापना करने के लिए इसे बाबेला भेज दिया गया। मंदिरों के मूल नायक बदलने की प्रथा आज भी जैनों में प्रचलित है।

इन शिलालेखों के अतिरिक्त महावीरजी के मंदिर से तीन शिलालेख और प्राप्त हुए हैं; जिनमें वि. सं. १०१५, १०४८ एवं ११२२ खुदा हुआ है। ये लेख अपूर्ण हैं। इनके बाद का १३३५ वि. का केवल एक शिलालेख हस्तिकुण्डी की उजड़ी अवस्था का चित्रण करता है जिसके अनुसार श्रावण मास की वदी १ सोमवार को सेवाड़ी के श्रावकों ने मंदिर पर ध्वज चढ़ाया जिसमें रातामहावीरजी नाम का उल्लेख है। **श्रीराता-भिधानस्य श्री महावीरदेवस्य नेचा प्रचयं वर्षस्थितिके कृत।** (शिलालेख सं. ३१९) सेवाड़ी के श्रावक ध्वज चढ़ाने क्यों आए? शायद तब तक नगरी उजड़ गई होगी।

संवत् १३४५ विक्रमी के शिलालेख में सर्वप्रथम हस्ति-कुण्डी का अपभ्रंश नाम हाथिउंडी मिलता है। अब यह ग्राम निश्चित रूप से नाडौल के अन्तर्गत होगया था एवं उजड़ गया था तभी तो सेवाड़ी के श्रावक यहाँ वार्षिक ध्वज चढ़ाने आये होंगे।

हस्तिकुण्डी

के

आचार्य

सन्त अनन्त-उद्धारक होते हैं। मोक्षमार्ग पर स्वयं चल कर वे भव्य जीवों को आत्मोत्थान का मार्ग दर्शाते हैं। अपनी स्थापना से लेकर आज तक याने प्राचीन हस्तिकुण्डी से आज की हथूंडी के लोकोपकारक प्रदेश में अनेक सन्तों ने विचरण कर जन-समुदाय को लाभ पहुँचाया होगा; पर उन सभी मुमुक्षु आत्माओं के विषय में हमारी यथेष्ट जानकारी नहीं है। केवल कुछ ही आचार्यों के नाम काल की अनन्त गहराई में से निकल कर हमारे सामने आए हैं। उनके विषय में भी हमारी जानकारी अत्यल्प है और जो है वह भी किंवदन्तियों से परिपूर्ण। श्रावक वीरदेव को उपदेश देकर महावीर स्वामी के इस भव्य जिनालय को बनवाने वाले आचार्य सिद्धसूरीश्वर जी से लेकर २००६ वि. में प्रतिष्ठा करवाने वाले युगवीर आचार्य विजयवल्लभसूरीश्वरजी तक सन्तवाणी का एक अजस्र प्रवाह हस्तिकुण्डी, हस्तितुण्डी या हथूंडी में बहता रहा है। उनमें से कतिपय आचार्यों के विषय में ज्ञात जानकारी यहां प्रस्तुत है।

श्रीअञ्चलागच्छीय मोटी पट्टावली में लिखा है कि वि. सं. १२०८ में आचार्य महाराज जयसिंहदेवसूरिजी अपने गुरु महाराज की आज्ञा से अपने शिष्य-परिवार सहित विचरते हुए हस्तिकुण्डी नगरी में पधारे। उस समय यहाँ अनन्तसिंह राठौड़ राज्य करता था। वह पूर्व-कर्म के विपाक से जलोदर के भयङ्कर रोग से पीड़ित था। जब यह समाचार आचार्य महाराज तक पहुँचा तो वे करुणा से द्रवित होकर रोगनिवारण हेतु राजमहल में गए। आचार्यश्री ने प्रासुक जल मँगवाया। उसे अभिमंत्रित कर महारानी को देते हुए उन्होंने कहा कि इसे राजा को पिलाने व लगाने से लाभ होगा। इस जल के सेवन से राजा का रोग दूर हो गया। इससे प्रभावित होकर अनन्तसिंह अपने परिवार सहित आचार्यश्री को वन्दन करने आए। राजा और रानी ने सविनय निवेदन किया कि वे जैनधर्म अङ्गीकार करना चाहते हैं। गुरु महाराज के उपदेश से हस्तिकुण्डी के श्रीसंघ ने अनन्तसिंह को ओसवाल जाति में मिला लिया। इस राजा के वंशज रातड़िया राठौर या हथुंडिया राठौड़ के नाम से आज भी ओसवालों में विद्यमान हैं।

आचार्यों की पट्टावलियों को देखने से ज्ञात होता है कि इस नगरी में श्री सिद्धसूरिजी, श्री कक्कसूरिजी, श्री देवगुप्तसूरिजी और श्री सर्वदेवसूरिजी प्रभृति साधु-महाराजों ने जनहित एवं धर्मप्रभावना के कार्य किए।

इतिहास–प्रेमी श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज के अनुसार विक्रम संवत् ६२३ में भयङ्कर दुष्काल पड़ा। उस समय आचार्य महाराज श्री देवगुप्तसूरीश्वरजी ने इस प्रदेश में पशुओं को घास एवं मनुष्यों को अन्नदान की व्यवस्था करवाई जिससे दुष्काल सुकाल में परिणत हो गया। विक्रम सं. ७७८ में

आचार्य महाराज श्री कक्कसूरिजी ने उपदेश देकर इस नगर में २९ जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया। शायद ये २९ देव-कुलिकाएं ही होंगी जो इस मन्दिर में बनी होंगी। आचार्यश्री ने यहाँ ५०० व्यक्तियों को दीक्षित किया तथा यहाँ के राजाओं तथा सामन्तों को जैनधर्म का उपदेश दिया।

तपागच्छ वंशावली के कुलगुरुओं ने लिखा है कि विक्रम सं. ९८८ में आचार्य महाराज श्री सर्वदेवसूरिजी अपने ५०० शिष्यों के साथ विहार करते हुए यहाँ पधारे। हस्तिकुण्डी नगर में प्रवेश करते समय उन्होंने राजकुल के श्री जगमाल को घोड़े पर शिकार लेकर आते हुए देखा। जगमाल ने आचार्यश्री को देखकर आँखें नीचे करलीं। दूसरे दिन महाराजश्री ने राज्य-सभा में उपदेश देते हुए कहा कि वीर पुरुषों का कर्त्तव्य निर्बलों का रक्षण है न कि भक्षण। राजा जगमालजी को यह बात लग गई। उन्होंने तथा उनके पुत्रों ने अहिंसा धर्म अङ्गीकार कर लिया। उनके वंशज झामड़ या झमड़ गोत्र से जाने जाते हैं।

इसी सम्बन्ध में पार्श्वनाथ भगवान की पट्टावलियों को देखने से ज्ञात होता है कि इस परम्परा के अधोलिखित आचार्यों ने यहाँ विहार कर शासन की प्रभावना बढ़ाई—

आचार्य सिद्धसूरिजी (३७० वि. से ४०० वि.)

ये जावालिपुर के मोरख गोत्रीय पुष्करणा शाखा के श्रेष्ठी जगाशाह के पुत्र थे। इनकी माता का नाम जैतीदेवी था। इन जगाशाह ने संघ निकाल कर संघवी की उपाधि प्राप्त की थी। इनके पुत्र का नाम ठाकुरसी था। इन्हीं ठाकुरसी ने देवगुप्तसूरिजी से दीक्षा अङ्गीकार की। इनका प्रथम नाम मुनि अशोकचन्द्र था। बाद में इनका नाम सिद्धसूरि हुआ। आचार्यप्रवर ने अनेक मन्दिर बनवाये एवं उनकी प्रतिष्ठा

करवाई। आपकी प्रेरणा से निर्मित इन मन्दिरों में दो मन्दिर बहुत प्रसिद्ध थे—एक मथुरा का महावीर मन्दिर एवं दूसरा हस्तिकुण्डी का मन्दिर। मथुरा के मन्दिर का निर्माता यशोदेव श्रेष्ठी था तथा हस्तिकुण्डी के मन्दिर का निर्माता वीरदेव श्रेष्ठी था।

आचार्य कक्कसूरिजी सप्तम (५५८ वि. से ६०१ वि.)

पार्श्वनाथ भगवान की पाट-परम्परा में (छत्तीसवें) आचार्य श्री कक्कसूरिजी सप्तम हुए। आपका जन्म-नाम विमल था। आपके पिता का नाम करमण एवं माता का नाम मैनादेवी था। आप मेदिनीपुर के निवासी थे। आपने सिद्धसूरिजी षष्ठ (छठे) से दीक्षा अङ्गीकार की थी। आपने हस्तिकुण्डी तीर्थ के दर्शन किए थे तथा यहाँ के प्राग्वाटवंशीय पाता को दीक्षा दी थी।

आचार्य देवगुप्तसूरिजी सप्तम (६०१ वि. से ६२८ वि.)

पार्श्वनाथ भगवान के सैंतीसवें पाट पर आप आचार्य रूप में प्रतिष्ठित थे। आपने वि. सं. ६१२ व ६२३ के भयङ्कर दुष्काल में मारवाड़ के इस प्रदेश में पशुओं के लिए चारे, पानी एवं मनुष्यों के लिए अनाज की व्यवस्था करवाई थी। हस्तिकुण्डी में आप पधारते रहते थे एवं आपके सदुपदेश से हस्तिकुण्डी के श्रीमालगोत्रीय ओटा ने धर्मार्थ बहुत काम किए।

आचार्य कक्कसूरिजी अष्टम (६६० वि. से ६८० वि.)

आप पार्श्वनाथ भगवान के २९वें पाट पर प्रतिष्ठित थे। आपके सदुपदेश से हथूंडी (हस्तिकुण्डी) के मोरख गोत्रीय ऊहड़ ने दीक्षा ग्रहण की थी।

आचार्य कक्कसूरिजी नवम (**वि. ७७८-८३७**) से हस्तिकुण्डी के पोकरणा गोत्रीय केहरा ने दीक्षा ग्रहण की थी। आप भी इस तीर्थ में पधारे हुए हैं। पार्श्वनाथ भगवान के ४४वें पाट पर **आचार्य सिद्धसूरिजी नवम** (८९२–९५२ **वि.**) हुए। इनके सदुपदेश से हस्तिकुण्डी के भीमाशाह ने दीक्षा अङ्गीकार की थी।

श्री हस्तिकुण्डी के शिलालेखों में निम्नलिखित आचार्यों एवं साधुओं के नाम मिलते हैं:—

यशोभद्र सूरि
शान्तिभद्राचार्य
वासुदेवाचार्य (बलिभद्रसूरि, केशवसूरि ये एकही नाम हैं)
शान्त्याचार्य
सूर्याचार्य
कृष्णविजय
रत्नप्रभोपाध्याय
पूर्णचन्द्रोपाध्याय
पार्श्वनाग
सुमनहस्ति

वासुदेवाचार्य —

वासुदेवाचार्य के इतिहास-प्रसिद्ध दो और नाम हैं— बलिभद्राचार्य एवं केशवसूरि। ये वासुदेवसूरि, यशोभद्रसूरिजी के शिष्य थे। लावण्यसमयजी 'बलिभद्ररास' में लिखते हैं:—

पुण्य प्रभावक जाणी ई विद्याबलि बलिभद्र ।
तसु चरित्र वखाणी ई जस गुरु जस भद्र ।।

आप विद्वान् एवं महाप्रभावक थे। यशोभद्रसूरिजी की मृत्यु के पश्चात् आपने अपनी विद्या के बल से लोगों को अपने वश में कर लिया। अपने जीवनकाल में यशोभद्रसूरिजी ने अपने पाट पर चौहानवंशीय शालिभद्रसूरिजी को प्रतिष्ठित किया इससे बलिभद्रजी को बहुत बुरा लगा। आप तब वहाँ से गिरनार पर्वत की गुफा में चले गए। उस समय यहाँ राय नवघन का पुत्र खंगार राज्य करता था। वह बौद्ध था एवं उसने गिरनार को अपने कब्जे में कर लिया था। इन्हीं बलिभद्रजी के चमत्कार से प्रभावित होकर यह तीर्थ बौद्धों के प्रभाव से मुक्त हुआ था। जब आप हस्तिकुण्डी में विराजते थे, उस समय आहड़ का राजा अल्लट[1] था। उसकी रानी को रेवती दोष हुआ। कई उपचारों के बाद भी जब रानी स्वस्थ नहीं हुई तब बलिभद्राचार्य को बुलाया गया; पर उन्होंने हस्तिकुण्डी में बैठे-बैठे ही रानी को ठीक कर दिया। तब उन्हें आहड़ में बुलाकर भारी उत्सव किया गया। यहीं पर आहड़ के राजा के सत्प्रयत्नों से शालिभद्रसूरि एवं बलिभद्रसूरि में विवाद का अन्त हुआ एवं बलिभद्रसूरिजी को वासुदेवसूरि नाम दिया गया। वासुदेवसूरि के गच्छ का नाम हस्तिकुण्डीगच्छ रखा गया। इसके पश्चात् वासुदेवसूरि ने महावीर भगवान के मन्दिर में रेवती दोष के अधिष्ठायक देवता की स्थापना की। आपको आचार्य पदवी यहीं प्राप्त हुई।

1. इस राजा के समय का एक शिलालेख १०१० विक्रमी का आहड़ में मिला है। आहड़ उदयपुर से पूर्व २ मील दूर है।

इन्हीं परम प्रभावक वासुदेवाचार्य ने विदग्धराज को सदुपदेश देकर हस्तिकुण्डी में मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई।

यशोभद्रसूरि—

यशोभद्रसूरि का जन्म सिरोही जिले की पिंडवाड़ा तहसील में स्थित पलाई नामक गांव में ९५७ वि. में हुआ था। इनकी माता का नाम गुणसुन्दरी एवं पिता का नाम पुण्यसार था। इनके बचपन का नाम सुधर्मा था। नाडलाई (गोड़वाड़) की पश्चिम दिशा में स्थित ऋषभदेव भगवान के मन्दिर के रङ्गमण्डप में सं. १५९७ विक्रमी के एक शिलालेख के अनुसार इनके पिता का नाम यशोवीर तथा माता का नाम सुभद्रा था। बचपन से ही ये बड़े मेधावी थे। श्री दीपविजयजी ने सं. १८७७ में अपने **सोहमकुलरत्नपट्टावलिरास** में श्री यशोभद्रसूरि के जन्म के विषय में लिखा है :—

सांडेरागच्छ में हुआ जसोभद्रसूरिराय।
नवसेंहें सत्तावन समें जनम वरस गछराय ।।२।।

उस समय संडेरकगच्छ के ईश्वरसूरि मुण्डारा में बदरी देवी की उपासना कर रहे थे। उनकी छह वर्ष की उपासना से प्रसन्न होकर देवी को प्रकट होना पड़ा। आचार्य महोदय ने उनसे एक सुशिष्य की प्राप्ति की इच्छा प्रकट की। देवी ने पलाई (पलासी) ग्राम के सुधर्मा को उनके शिष्यत्व के योग्य बताया। ईश्वरसूरि अपने संघ के साथ पलाई ग्राम पधारे। वहाँ उन्होंने सुधर्मा के माता-पिता से सुधर्मा को मांगा। बहुत दुःख भरे हृदय से माता-पिता ने सुधर्मा को ईश्वरसूरिजी

को समर्पित किया। ईश्वरसूरिजी ने सुधर्मा को दीक्षित कर अपना समस्त ज्ञान उसे प्रदान कर दिया। इसके बाद मुंडारा में सुधर्मा ने बदरीदेवी की आराधना की। देवी ने सुधर्मा के शरीर में अवतरित होकर उसका तिलक किया। देवी ने ही सुधर्मा का नया नाम दिया यशोभद्रसूरि। सं. १६८३ में लिखित **संस्कृत-चरित्र** से इस बात की पुष्टि होती है।

सं. ९६८ में ११ वर्ष की अल्पायु में ही इन्हें मुंडारा नगर में सूरिपद की प्राप्ति हुई।

संवत् नवसैं है अड़सठें सूरि पदवी जोय।
बदरी सुरी हाजर रहें पुन्य प्रबल जस जोय।।[1]

(दीपविजयजी कृत सोहमकुलरत्नपट्टावलिरास वि.सं. १८७७)

पर १६८३ वि. में लिखित मुनिसुन्दरसूरि कृत **उपदेश-रत्नाकर** में उन्हें पाली नगरी में सूरि पद की प्राप्ति की बात कही गई है।

पल्लीपुर्यां श्री यशोभद्रसूरेराचार्यपदावसरे—

संवत् ९६९ में इन्होंने पाली एवं मुण्डारा में प्रतिष्ठाएँ करवाईं एवं अपनी विद्या का परिचय दिया। सांडेराव में अधिक जनसमुदाय के कारण घी समाप्त हो गया था तो गुरु ने अपने विद्याबल से पाली के धनाशाह सेठ की दुकान से घी मँगवा कर सांडेराव में घी के पात्र भर दिये थे।

---

1. बदरीदेवी का मंदिर मुंडारा (पाली) गांव में आज भी अपने भव्य परिवेश को लेकर खड़ा है।

सांडेराव से आचार्यश्री चित्तौड़ पधारे। मेवाड़ में आघाट नगर के राजा के मंत्री ने एक जैन मन्दिर बनवाया था। आचार्यश्री ने उस मन्दिर में पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई। इसके बाद करेड़ा (करहेट), कविलाणक, संभरी (सांभर), भेसर आदि गाँवों में एक ही दिन प्रतिष्ठा करवा कर आचार्यश्री ने सबको चमत्कृत कर दिया। कविलाणक गाँव में प्रतिष्ठा के अवसर पर इतने अधिक लोग आए कि कुओं का पानी समाप्त हो गया तब श्रीसंघ की विनती पर आपने नख द्वारा एक कुआ खोदा एवं ९५ कुओं में पानी भर दिया।

अद्यापि तत्र नखसूताख्यया कूपः प्रसिद्धोऽस्ति।

(संस्कृतचरित्र १६८३ विक्रमी)

यह नखसूत नाम का कुआ आज भी मौजूद है।

आहड़ के भद्रव्यवहारी श्रावक ने शत्रुञ्जय एवं गिरनार तीर्थ की यात्रार्थ संघ निकाला। इस संघ में यशोभद्रसूरिजी साथ थे। अन्हिलपुर पाटण में मूलराज सोलंकी ने यशोभद्र-सूरिजो को पाटण में स्थिरवास करने की प्रार्थना की। आचार्यश्री को एक कमरे में ठहराया गया एवं यह सोचकर कि आचार्यश्री संघ के साथ नहीं जा सकें, राजा ने उस कमरे को बन्द करवा दिया। पर योगविद्या के बल पर आचार्य सूक्ष्म रूप धारण कर बाहर निकल गए एवं श्रीसंघ में सम्मिलित हो गए। रास्ते में पानी की कमी होने पर गुरु ने एक सूखे तालाब को पानी से लबालब भर दिया। उस सरोवर का नाम साधु सरोवर है।

शत्रुञ्जय की यात्रा कर संघ गिरनार पहुँचा। वहाँ भगवान को आंगी के चोरी गए आभूषणों को पुनः प्राप्त करवाया। गिरनार से सङ्घ फिर आहड़ गया। आहड़ से आचार्य नडुलाई (वर्तमान नारलाई) गए। यहाँ गुरु के कई चमत्कार प्रसिद्ध हैं।

नडुलाई के जैन गुजरात के वलभीपुर से आए थे।[1] वलभी का नाश ८५० वि. के आसपास हुआ था। यहाँ आचार्य के सदुपदेश से वलभीपुर के ऋषभदेव भगवान के मन्दिर को लाया गया था जिसे गुरुजी के चमत्कार रूप में माना जाता है।

सम्वत् दस सौ दाहोतरे किया चौरसीवाद।
वलभीपुर थी आणिए ऋषभदेव प्रसाद॥
(यशोभद्रसूरिरास)

यहीं पर सूरिजी ने एक ब्राह्मण योगी का मानमर्दन किया था। सूरिजी की मृत्यु के पश्चात् उसकी भी मृत्यु हो गई।

सम्वत् १०३९ में सूरिजी का स्वर्गवास नाडलाई में हुआ जिसकी पुष्टि **संस्कृत-चरित्र** (सं. १६८३) से होती है।

विक्रमानन्दविश्वाभ्रचंद्रप्रमितवत्सरे [१०३९]।
शुचौ शुक्लचतुर्दश्यां स्वर्गेऽगान्मुनिपुङ्गवः॥

परन्तु यशोभद्ररास के अनुसार उनका स्वर्गवास नाडलाई में सम्वत् १०२९ वि. में हुआ।

---

1. अलेक्जण्डर किनलॉक कार्बस—रासमाला कर्नलटाड।
Western India Rajasthan. Book, P.217.

ये ही यशोभद्रसूरि बलिभद्रसूरि [वासुदेवसूरि] के गुरु थे जिन्होंने हस्तिकुण्डी गच्छ की स्थापना की थी।

वासुदेवाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित गच्छ का नाम हस्तिकुण्डी गच्छ एवं उनके गुरु द्वारा स्थापित गच्छ का नाम संडेरकगच्छ है। नारलाई (नन्दकुलवती) की श्मशान भूमि में आज भी दो स्तूप खड़े हैं जिनमें से एक पर केवल 'सूरियशोभद्राचार्यादि' ही पढ़ने में आता है। गुरु एवं शिष्य दोनों में प्रारम्भ में खूब विवाद रहा। गोड़वाड़ में जसिया और केसिया सम्बन्धी कई दन्तकथाएँ आज भी चल रही हैं। इन दन्तकथाओं के सभी चमत्कार इन गुरु-शिष्य के चमत्कारों से मिलते-जुलते हैं। जसिया से यशोभद्रसूरि एवं केसिया से केशवसूरि अर्थात् वासुदेवसूरि ग्रहण होना चाहिए।

नाड़लाई की पश्चिम दिशा में गांव के बाहर ऋषभदेव भगवान का भव्य मन्दिर है। इस मन्दिर के रंगमण्डप के दक्षिण की तरफ स्तम्भ पर एक शिलालेख है जिसमें संडेरक-गच्छ एवं यशोभद्रसूरि प्रभृति आचार्यों का वर्णन है। लेख की चौडाई ९ इंच व लम्बाई ४ फुट आठ इंच है। इस प्रशस्ति के रचयिता ईश्वरसूरि हैं एवं समय सं. १५९७ वैशाख शुक्ला ६। लेख इस प्रकार है :—

॥ श्रीयशोभद्रसूरिगुरुपादुकाभ्यां नमः ॥

संवत् १५९७ वर्षे वैशाखमासे शुक्लपक्षे षष्ठ्यां तिथौ शुक्रवासरे पुनर्वसु ऋक्ष प्राप्त चन्द्रयोगे श्री संडेरगच्छे कलिकाल गौतमावतार समस्त भविकजनमनोऽम्बुजविबोधनैक दिनकर

सकल लब्धिनिधान युगप्रधान जितानेक—वादीश्वरवृंद प्रणतानेक नरनायक मुकुटकोटिघृष्ट पादारविंद श्री सूर्य इव महाप्रसाद चतुः षष्टि सुरेन्द्र संगीयमान साधुवाद श्री षंडेरकोयगण बुधावतस सुभद्रा कुक्षि सरोवर राजहंस यशोवीर साधुकुलाम्बर नभोमणि सकलचारित्र चक्रवर्ती वक्तृ चूडामणि म० प्रभु श्री यशोभद्रसूरयः तत् पट्टे श्री चाहुमान वंशशृंगार लब्ध समस्त निरवद्यविद्या जलधिपार श्री बदरा (री) देवी दत्त गुरुपदप्रसाद स्वविमलकुल प्रबोधनैक प्राप्तपरम यशोवाद म० श्री शालिसूरिः त० श्री सुमतिसूरिः त० शान्तिसूरिः त० ईश्वरसूरि एव (वं) यथाक्रममनेक गुणमणि गणरोहण गिरीणां महा सु (सू) रीणां वंशे पुनः श्री शालिसु (सू) रि त. श्री सुमतिसूरिः तत्पट्टालंकार हार म० श्री शांतिसूरिवराणां सपरिकराणां विजयराज्ये ।। अथेह श्री मेदपाटदेशे श्री सूर्य-वंशोय महाराजाधिराज श्रीशिलादित्यवंशे श्रीगुहिदत्त राउलश्री बप्पाक श्री षुम्माणादि महाराजान्वये राणा हमीर श्री खेतसिंह श्री लषमसिंह पुत्र श्री मोकल मृगांकवंशोद्योतकर प्रताप-मार्तण्डावतार आसमुद्रमहीमण्डलखंडन अतुल महाबल राणा श्री कुंभकर्णपुत्र राणा श्री रायमल्ल विजयमान प्राज्य राज्ये तत्पुत्र महाकुँअर श्री पृथ्वीराजानुशासनात् श्री उकेशवंशे राय जडारी गोत्रे राउल श्री लाषण पुत्र श्री सं. दूदवंशे म० मयूरसुत म० साढूल : तत्पुत्राभ्यां श्री नन्दकुलवत्यां पुर्यां सं. ९६४ श्री यशोभद्रसूरि मंत्रशक्ति समानीतायां त० सायरकारित देवकुलिकाद्य द्धारतः साअर नाम जिनवसत्यां श्री आदीश्वरस्य-स्थापना कारिता कृता श्री शांतिसूरिपट्टे देवसुन्दर इत्यपरशिष्य-नामभिः आ. ईश्वरसूरिभिः । इति लघुप्रशस्तिरियं लि. आचार्य-श्री ईश्वरसूरिणा उत्कीर्णा सूत्रधार सोमाकेन । शुभम् ।।

अनुवाद

गुरु श्री यशोभद्रसूरि की चरण पादुकाओं को नमस्कार हो। संवत् १५९७ के वैशाखमास की सुद ६ को शुक्रवार व पुनर्वसु नक्षत्र के चन्द्रयोग में संडेरकगच्छ में कलिकाल के गौतमस्वामी के अवतार, समस्त भविजनों के मनरूपी कमलों को खिलाने में सूर्य के समान, समस्त लब्धियों के भण्डार, युगप्रधान अनेक तार्किकों को, जीतने वाले, अनेक राजाओं के नमस्कार करते समय मुकुटों से चरणस्पर्श होने वाले, सूर्य के समान महादानी, चौसठ इन्द्रों द्वारा यशोगान गाये जाने वाले, श्री संडेरक गच्छ के ज्ञानियों के आभूषण, माता-सुभद्रा के कुक्षि–सरोवर के राजहंस, यशोवीर, साधुकुलगगन के चन्द्र, समस्त चरित्रधारियों में चक्रवर्ती, वक्ताओं में सर्वोत्कृष्ट, महाप्रभावी प्रभु श्री यशोभद्रसूरि हुए। उनकी पाट परम्परा में चाहमान वंश के शृंगार, समस्त विद्याओं में पारंगत श्री बदरी देवी द्वारा दिये गए गुरुपद से सुशोभित, अपने विमल वंश को ज्ञान देने से अनेक यशोवाद प्राप्त करने वाले श्री शालिसूरि महाराज हुए। उनके श्री सुमतिसूरि–शान्तिसूरि–ईश्वरसूरि क्रम से गुणमणियों के शिखर पर चढ़ने वाले महान् सूरियों के वंश में (पाट परम्परा में) फिर शालिसूरि–श्री सुमतिसूरि हुए। उनके पट्टालंकार श्री शांतिसूरिजी सशिष्यमण्डल विराजमान हैं। इस समय श्री मेवाड़ देश में सूर्यवंशी महाराजाधिराज श्री शिलादित्य के वंश में श्री गुहिदत्त–श्री बप्पारावल, श्री खुमान महाराणा के वंश में राणा हम्मीर श्री खेतसिंह, श्री लाखा के पुत्र मोकल चन्द्रवंशियों को प्रकाशित करने वाले, प्रताप में सूर्य के अवतार, समुद्र पर्यन्त पृथ्वीमण्डल का भोग करने वाले, अतुल बलशाली राणा श्री कुम्भाजी के पुत्र राणा

श्री रायमलजी विराजमान हैं। उनके पुत्र महाराजकुमार श्री पृथ्वीराजजी की आज्ञा से ओसवाल वंश के रायजड़ारी (राय भण्डारी) गौत्र के रावल श्री लाखण पुत्र श्री सं. दूद वंशे म० मयूर पुत्र म० सार्दूल, एवं उसके दो पुत्रों ने नाड़लाई नगरी में सं. ९६४ में श्री यशोभद्रसूरि द्वारा मंत्रशक्ति से लाये गये एवं सायर श्रावक द्वारा बनवाई गई देहरीका उद्धार किया एवं सायर नाम की जैन बस्ती में श्री ऋषभदेव भगवान की स्थापना की। उसकी प्रतिष्ठा आचार्य श्री शान्तिसूरि की पाट परम्परा के देवसुन्दर अपर नाम ईश्वरसूरि ने की। इस लघु प्रशस्ति को आचार्य ईश्वरसूरि ने लिखा एवं सोमाक सोमपुरा ने खोदा। शुभम्।

कविवर लावण्यसमयजी ने अपने **यशोभद्ररास** में आ० यशोभद्रसूरि की माता का नाम गुणसुन्दरी व पिता का नाम पुण्यसार लिखा है पर इस लेख के अनुसार उनकी माता का नाम सुभद्रा था (सुभद्राकुक्षिसरोवरराजहंसः)।

संडेरकगच्छ में शालिसूरि, सुमतिसूरि, शांतिसूरि और ईश्वरसूरि ये चार नाम बार-बार आते हैं। इस बात की पुष्टि ईश्वरसूरि ने अपने **सुमित्र चरित्र** में अन्त में दी गई प्रशस्ति में इस प्रकार की है :—

एवं चतुर्नामभिरेव भूयो भूयो बभूबुबंहुशोऽत्रगच्छे सूरीश्वराः सूरिगुणैरुपेता पवित्रचारित्रधरा महान्तः।

अर्थात् इस गच्छ में बारम्बार इसी तरह सूरिगुणों से युक्त और पवित्र चारित्रधारी क्रम से चार नाम वाले आचार्य हुए।

शान्तिभद्राचार्य (शालिभद्रसूरि)—

ये यशोभद्रसूरिजी के शिष्य थे एवं वासुदेवसूरि के प्रतिद्वंद्वी। आहड़ के प्रयत्न से वासुदेवसूरि एवं शालिभद्रसूरि में समझौता हो गया था।

शान्त्याचार्य—

इन्होंने विक्रमी सं. १०५३ में ऋषभदेव भगवान की मूर्ति की स्थापना एवं मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई थी।

सूर्याचार्य—

सूर्याचार्य ने १०५३ वि. की धवलराज व हस्तिकुण्डी तीर्थ की प्रशस्ति लिखी।

कृष्णविजय–

कृष्णविजय के विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। बस, इतनी ही जानकारी मिलती है कि इन्होंने शिलालेख सं. ३२० लिखा।

उपर्युक्त प्रसिद्ध आचार्यों के अतिरिक्त श्री रत्नप्रभोपाध्याय, श्री पूर्णचन्द्रोपाध्याय, श्री पार्श्वनाग और श्री सुमनहस्ति प्रभृति साधुओं ने भी राता महावीरजी के लिए कार्य किया।

१२९९ वि. में श्री रत्नप्रभोपाध्याय के शिष्य पूर्णचन्द्र उपाध्यायजी ने मन्दिरजी में शिखर व दो आले बनवाए। चूंकि शिलालेख सं. ३ सं. ११२२ मार्गशीर्ष सुदी १३ अधूरा है अतः

श्रीपार्श्वनाग एवं सुमनहस्तिजी के विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती। हस्तिकुण्डीगच्छ के आचार्यों की नामावली का एक शिलालेख जोधपुर के मुंशी देवीप्रसाद जी ले गए थे। **(प्राचीन जैन स्मारक पृष्ठ १६० तथा एपीग्राफिका इण्डिया, भाग १०, पृष्ठ १७ से २०)**

श्रीमद् विजयवल्लभसूरीश्वरजी–

विजयवल्लभसूरिजी का जन्म बड़ौदा नगर में विक्रमी संवत् १९२७ में हुआ था। इनके पिता का नाम दीपचन्द जी और माता का नाम इच्छाबाई था। ९ वर्ष की अवस्था में ही बालक छगनलाल पितृविहीन हो गए थे। दो वर्ष बाद इनकी माता भी मरणधर्म को प्राप्त हुई। माता ने इन्हें उपदेश दिया था कि वे अपने आपको अनाथ न समझकर अर्हत् की शरण स्वीकार करें। बालक छगनलाल के मन में वैराग्य के बीज अंकुरित हो गए। जब वे १५ वर्ष के थे उस समय जैनाचार्य श्रीमद्विजयानन्द सूरीश्वरजी बड़ौदा पधारे। उनके उपदेशामृत से छगनलाल ने दीक्षा ले ली एवं मुनि विजयवल्लभ नाम प्राप्त किया। विक्रम सम्वत् १९५३ में गुजरांवाला में श्री विजयानन्दसूरिजी कालधर्म को प्राप्त हुए। अपने जीवन की अन्तिम रात्रि में गुरु ने इस योग्य शिष्य को सन्देश दिया कि देव-मन्दिरों की रक्षा के लिए सरस्वती-मंदिरों की स्थापना करने का प्रयत्न करना। साधु-धर्म का पालन करते हुए विजयवल्लभसूरिजी ने सामाजिक उत्थान एवं शिक्षा–प्रसार को अपना लक्ष्य बनाया। आपके प्रयत्नों से बम्बई में श्री महावीर जैन विद्यालय की स्थापना हुई जिसने शिक्षा के क्षेत्र में बहुत काम किया है। श्री आत्मानन्द जैन कालेज, अम्बाला; श्री पार्श्वनाथ उम्मेद कालेज, फालना; श्री

आत्मानन्द जैन गुरुकुल, गुजरांवाला तथा अम्बाला, लुधियाना, मालेरकोटला, झगड़िया, सादड़ी एवं श्री पार्श्वनाथ सैकण्ड्री स्कूल, वरकाणा आदि की स्थापना इन्हीं के सदुपदेश से हुई। भारत की भावात्मक एवं साम्प्रदायिक एकता के लिए आप सदैव प्रयत्नशील रहे। हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी की स्थापना में भी आपने योगदान किया।

आपने अपने जीवनकाल में कई मन्दिरों तथा तीर्थों के जीर्णोद्धार करवाये। विक्रमी सं. २००६ में श्री राता महावीर के मन्दिर का जीर्णोद्धार आपही के सदुपदेश से सम्पन्न हुआ एवं प्रतिष्ठा हुई। आपका स्वर्गवास ई. सन् १९५४ में बम्बई में हुआ। आपकी अन्तिम यात्रा में दो लाख से अधिक शोकातुर लोग थे। कार्तिक सुदी २ विक्रमी सं. २०२७ को आपकी शताब्दी बड़ी धूमधाम से बम्बई में मनाई गई एवं बम्बई के मध्य पायधुनी को आपके नाम पर 'विजयवल्लभ चौक' नाम दिया गया। आपका समाधि–मन्दिर बम्बई में भायखला में स्थित है। अपने जीवनकाल में गुरुवर कई बार हस्तिकुण्डी पधारे थे। आपके नाम से हस्तिकुण्डी में गुरु-मन्दिर बनाया गया है। फालना में भी वल्लभ कीर्ति-स्तम्भ एवं वल्लभ विहार पुस्तकालय आपके नाम पर बने हुए हैं।

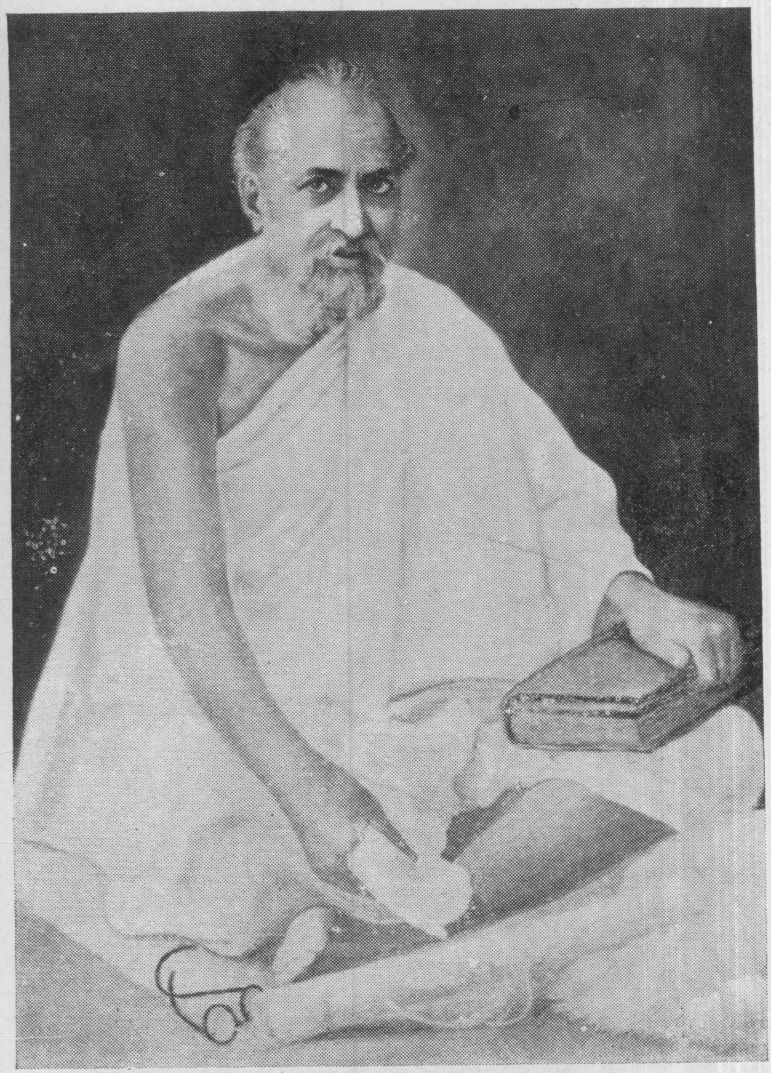

पंजाबकेसरी, मरुधरदेशोद्धारक, युगदर्शी
आचार्य विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज

सम्वत् २००६ की प्रतिष्ठा के समय आचार्य विजयवल्लभ सूरीश्वरजी के साथ विराजित मुनिमण्डल

हस्तिकुण्डी
के
राजा

✲

राजस्थान में राष्ट्रकूटों के प्राचीनतम शिलालेख मेवाड़ के धनोप ग्राम और मारवाड़ की हस्तिकुण्डी नगरी में प्राप्त हुए हैं। ये राष्ट्रकूट भी किसी-न-किसी रूप में मारवाड़ के राजवंश की प्राचीन परम्परा से जुड़े हुए थे क्योंकि इस वंश की दानशीलता इतिहास के झरोखों से आज भी झाँकती है। राष्ट्रकूटों के बहुत से दान-पत्र मिले हैं साथ ही अनेक प्रशस्तियाँ भी। राष्ट्रकूट गोविन्दचन्द्र के बयालिस दानपत्र प्राप्त हुए हैं।[1] राष्ट्रकूट दन्तिवर्मा (वि. सं. ८१०) के दानपत्र का एक श्लोक राष्ट्रकूटों की दानप्रियता को उदाहृत करता है—

मातृभक्तिः प्रतिग्रामं, ग्रामलक्षचतुष्टयम्।
ददत्या भूप्रदानानि, यस्य मात्रा प्रकाशिता।।

अर्थात् उस दन्तिवर्मा की माँ ने राज्य के चार लाख गाँवों में प्रत्येक गाँव में धर्मार्थ भूमि का दान किया।

---

1. राष्ट्रकूटों का इतिहास : विश्वेश्वरनाथ रेउ, भूमिका।

ये राष्ट्रकूट बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। इलौरा की गुफाओं के दशावतार वाले मन्दिर में दन्तिदुर्ग के एक शिलालेख में यह लिखा है—

न वेत्ति खलु कः क्षितौ प्रकटराष्ट्रकूटान्वयं।

अर्थात् पृथ्वी पर प्रसिद्ध राष्ट्रकूट वंश को कौन नहीं जानता ?

दक्षिण पर राज्य करने वाले राष्ट्रकूटों के पचहत्तर दानपत्र मिले हैं। राष्ट्रकूट गोविन्दराज तृतीय (ई. सन् ८०८) का राधनपुर का दानपत्र बहुत प्रसिद्ध है। हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट इन्हीं राष्ट्रकूटों की परम्परा के थे। यों तो राष्ट्रकूट शैव, वैष्णव और शाक्त मतों के अनुयायी रहे हैं लेकिन गोविन्दराज तृतीय का पुत्र अमोघवर्ष, जैनाचार्य जिनसेनसूरि का शिष्य था। अमोघवर्ष की कृति **प्रश्नोत्तर रत्नमालिका** में लिखा है—

प्रणिपत्य वर्द्धमानं प्रश्नोत्तररत्नमालिकां वक्ष्ये।

अर्थात् वर्द्धमान (महावीर) भगवान को प्रणाम करके 'प्रश्नोत्तर रत्नमालिका' की रचना करता हूँ।

जैनों के **उत्तरपुराण** में अमोघवर्ष के सम्बन्ध में एक श्लोक लिखा है—

यस्य प्रांशुनखांशुजाल विसरद्धान्तराविर्भवत्,
पादाम्भोजरजः पिशङ्गमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः।
संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलं,
स श्रीमाञ्जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम्॥

अर्थात् जिस अमोघवर्ष की चरण रज को अनेक राजाओं के मुकुट छूने थे, वह राजा अमोघवर्ष पूज्य जिनसेनसूरि के चरणों की वन्दना कर अपने आपको धन्य समझता था।

हस्तिकुण्डी के राठौड़ राजा भी सम्भवतः इसी अमोघवर्ष के सामन्त थे। हस्तिकुण्डी नगरी आज नहीं है परन्तु इसकी अमर कीर्तिस्वरूप राता महावीरजी का भव्य जिनालय आज भी पूर्व पुरुषों की यशोगाथा अपने में संजोये है। इस प्राचीन मन्दिर के शिलालेख अपने अन्तर में इसके निर्माताओं की गौरव गाथा युगों से गाते आ रहे हैं। हस्तिकुण्डी के शासकों के सम्बन्ध में ज्ञात सामान्य जानकारी यहाँ प्रस्तुत है।

हरिवर्मा—

राठौड़वंशीय हरिवर्मा बड़े प्रतापी राजा थे। ये आठवीं सदी में हस्तिकुण्डी पर राज्य करते थे। इनकी रानी का नाम रुचि था। विदग्धराज इनके पुत्र थे।

विदग्धराज—

राजा हरिवर्मा के पश्चात् विदग्धराज हस्तिकुण्डी की गद्दी पर बैठे। ये मेवाड़ के राजा अल्लट के मित्र थे। अल्लट के परामर्श से ही विदग्धराज ने बलिभद्रसूरिजी को हस्तिकुण्डी में बुलाया था और उनके उपदेश से जैनधर्म भी स्वीकार किया था।

विदग्धराज ने हस्तिकुण्डी में महावीर भगवान के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया एवं प्रतिष्ठा भी करवाई।

इस राजा ने ही सर्व प्रथम अपने वजन के बराबर सोना तोल कर तुलादान किया और मन्दिर के लिए दानपत्र लिखा। इन तथ्यों की पुष्टि इसी पुस्तक के आगामी पृष्ठों में शिलालेखों के अनुवाद से होगी।

मम्मटराज—

विदग्धराज के बाद उसका पुत्र मम्मटराज राजा हुआ। उसने वासुदेवसूरि की पूजा कर दूसरा दानपत्र जारी किया कि मेरे पिताश्री विदग्धराज ने जो दान-शासन जारी किया है उसका बराबर पालन करना प्रजा का धर्म है। मम्मटराज ने सर्वप्रथम प्रजा को यह भी बताया कि देवद्रव्य एवं गुरूद्रव्य का भक्षण करना महापाप है। मम्मट के राज्यकाल में ही आचार्य सर्वदेवसूरि इस नगरी में पधारे थे। उनके उपदेश से हस्तिकुण्डी के राव जगमाल ने परिवार सहित जैनधर्म अंगीकार किया था।

धवलराज—

धवलराज मम्मटराज का पुत्र था। यह बहुत बलवान राजा था। मालवा के मुञ्ज ने मेवाड़ आकर आहड़ का मान भङ्ग किया तब धवलराज ने चित्तौड के राजा धरणीवराह की सहायता की। गुजरात का मूलराज सोलंकी भी इससे डरता था। यह दीनदुखियों का रखवाला और अशरण को शरण देने वाला था। धनुर्विद्या में निष्णात धवलराज परम दानी भी था।

धवलराज ने आचार्य शान्तिसूरि के उपदेश से अपने दादा विदग्धराज द्वारा प्रतिष्ठित मन्दिर के जीर्ण होने पर

१०५३ विक्रमी में जीर्णोद्धार करवा कर प्रतिष्ठा करवाई और पिप्पल नाम का कुआ मन्दिरजी को भेंट किया।

बालाप्रसाद––

धवलराज ने अपने पुत्र बालाप्रसाद को अपने जीवनकाल में ही हस्तिकुण्डी की गद्दी पर बैठा दिया था।

दत्तवर्मा राठौड़––

सं. १०८० वि., ई. सन् १०२३ में महमूद गजनवी से युद्ध में दत्तवर्मा राठौड़ पराजित हुए थे, इनके साथ नाडौल के रामपाल चौहान भी लड़े थे।

सिंहाजी––

ये हस्तिकुण्डी-हस्थूण्डी के सम्भवतः अन्तिम शासक थे। इन्होंने वरसिंह बालीसा चौहान से सं. १२३२ (सन् ११७५) में युद्ध किया था एवं अपनी विजययात्रा का श्रीगणेश किया था। ये सिंहाजी मारवाड़ के राठौड़ राजवंश के संस्थापक भी हो सकते हैं। इस विषय में खोज अपेक्षित है।

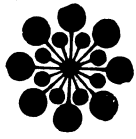

हस्तिकुण्डी

का

समाज

भारतवर्ष की प्राचीन ध्वस्त नगरियों के इतिहास-लेखन में हस्तिकुण्डी को उचित न्याय नहीं मिला है। चन्द्रावती, जाबालिपुर, श्रीमाल, प्रभासपट्टन, धार, अवन्ती, राजगृह आदि प्राचीन नगरियों को इतिहास ने अपने एलबम में सजाया है और उल्लिखित प्रसंगों के दर्पण में आज भी हम उनके विगत वैभव को बार-बार देखते हैं परन्तु राष्ट्रकूटों की प्राचीन राजधानी हस्तिकुण्डी के शिलालेखों के परिप्रेक्ष्य में इस नगरी के जीवन्त वैभव को निहारने का अवसर या तो इतिहासकारों को नहीं मिला अथवा बीजापुर (प्राचीन हस्तिकुण्डी) के राठौड़ों के राज्य के अन्तर्वर्ती होने के कारण एवं जोधपुर में कन्नौज के राष्ट्रकूटों का राज्य होने के कारण अज्ञात परम्परा के इन (हस्तिकुण्डी के) राष्ट्रकूटों को महत्त्व नहीं देना चाहने के कारण श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ ने अपने इतिहास में इन राष्ट्रकूटों एवं इस नगरी की सामाजिक व्यवस्था का विशेष वर्णन नहीं किया।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। किसी भी युग के

समाज का चित्र उस काल के उपलब्ध साहित्य के आधार पर अंकित किया जा सकता है। हस्तिकुण्डी के ऐश्वर्य के गीत गाने वाला साहित्य तो उपलब्ध नहीं है परन्तु उस समय के शिलालेख तत्कालीन समाज–व्यवस्था पर अवश्य प्रकाश डालते हैं।

हस्तिकुण्डी के शिलालेखों से राठौड़ों के धर्म, समाज, दानव्यवस्था, वाणिज्य, कृषि एवं कर–व्यवस्था के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। संवत् ९७३ के राठौड़ों के शिलालेख संख्या ३१९ के प्रथम श्लोक के अनुसार राठौड़ विदग्धराज और उनके पुत्र मम्मट ने अपने आप को जैनधर्मावलम्बी बताया है।

परवादिदर्पमथनं, हेतुनयसहस्रभङ्गकाकीर्णम्।
भव्यजनदुरितशमनं, जिनेन्द्रवरशासनं जयति॥

अर्थात् भव्यजनों के पाप का शमन करने वाले जिनेन्द्र भगवान के शासन की जय हो।

मम्मट का पुत्र धवल भी जैनधर्मानुयायी था। धवल के बाद भी राठौड़ों के सामूहिक रूप से जैनधम अङ्गीकार करने का वर्णन मिलता है। राठौड़ जगमाल और अनन्तसिंह के जैनधर्म अङ्गीकार करने के उल्लेख जैन-साहित्य में मिलते हैं।[1] अनन्तसिंह[2] ने वि. सं. १२०८ में आचार्य जयसिंहसूरि के उपदेश से जैनधर्म स्वीकार किया था। राठौड़ों की जैनधर्मावलम्बी होने की परम्परा भले ही कायम न रह सकी हो पर हस्तिकुण्डी के संवत् ९७३, ९७६ व १०५३ वि. के शिलालेख उनके अक्षय शासन के जैनधर्म प्रेमी होने के प्रमाण हैं।

---

1. श्री अंचलगच्छीय मोटी पट्टावली।
2. अनन्तसिंह के वंशज रातड़िया राठौड़ अथवा हथुण्डिया राठौड़ के नाम से आज भी प्रसिद्ध हैं।

जैनधर्म उस काल में हस्तिकुण्डी नगरी एवं उसके द्वारा शासित प्रदेश का राजधर्म हो गया था। राज्याश्रय प्राप्त होने से प्रजा में भी इस धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न हो गई थी।

राष्ट्रकूट विदग्धराज ने हस्तिकुण्डी में एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण करवाया था। यह मन्दिर उत्तुंग शिखर वाला था (**श्लोक ६**)। विदग्धराज अपनी दानशीलता के कारण अति प्रसिद्ध रहा है। वह अपने तुलादान के दो भाग देवताओं को और एक भाग गुरु को विद्या के लिए अर्पित करता था। देवताओं को दो भाग अर्पित करने का अर्थ है कि राठौड़ राजाओं ने कलाप्रेमी होने के कारण देवमन्दिरों के निर्माण के लिए एवं विभिन्न कलाओं को प्रोत्साहन देने के लिए काफी धन खर्च किया। एक भाग गुरु को दान करने का अर्थ है कि उन्होंने अपनी प्रजा की शिक्षा के लिए अथक प्रयास किया।

व्यापार एवं वस्तुओं के क्रय-विक्रय से प्राप्त आय की एक निश्चित राशि धर्मार्थ राजकोष में पहुँचती थी एवं इसी शुद्ध धन से सार्वजनिक निर्माण कार्य होते थे। सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा का दायित्व राजा, राजकुमार और नागरिकों का होता था। गुरु तथा देवता के धन को खाने वाला महापापी माना जाता था।

तत्कालीन व्यापार, वाणिज्य एवं कर-व्यवस्था का जितना सुन्दर स्पष्टीकरण हस्तिकुण्डी का शिलालेख सं. ३१९ संवत् ९७३ वि. करता है उतना अन्य राजवंशों के दानपत्रों में भी खुलासा नहीं मिलता। इस प्रकार की व्यवस्था से पूर्व मम्मटराज ने हस्तिकुण्डी के मन्दिर में एक विशाल आयोजन कर

नाना देशों से आए हुए लोगों के समक्ष राजकीय आदेश प्रसारित किया। करनिर्धारण की पद्धति इस प्रकार थी—बीस पोठों (भारवाही बैलों) के माल की बिक्री पर धर्मार्थ एक रुपया राजकोष में पहुँचता था। इसी प्रकार माल से भरी हुई गाडियों के नगरी में से गुजरने पर सबको एक रुपया कर रूप में देना अनिवार्य था (वर्तमान नगरपालिकाओं के चुंगी नाकों पर गाड़ियों द्वारा दी जाने वाली राशि की भाँति)।

राठौड़ों की राजव्यवस्था एवं कर-व्यवस्था के अन्तर्गत नगर में और गांव में भी प्रत्येक घाणी और अरहट पर कर लगता था। पान खाने का रिवाज था इसलिए पान-विक्रेताओं पर कर लगता था। जुआ खेलने का भी प्रचलन था एवं इस खेल को सामाजिक मान्यता थी। सरकार इसके अड्डे चलाने के लिए कर वसूल करती थी। कर की सुदृढ़ व्यवस्था थी तभी तो कुलियों व दुधारू पशुओं पर भी कर लगता था। कृषि की उपज एवं वन-सम्पदा के दोहन पर भी कर देय था। कपास, गुग्गुल, मजीठ आदि सभी वस्तुएँ राजकीय दृष्टि से कर योग्य थीं[1]। लोग मन्दिरों के लिए धन एवं सामग्री अर्पित करते थे। स्वयं राजा धवल ने अपना पिप्पल नामक कुआ मन्दिर को अर्पित किया था। प्रत्येक रहट से मन्दिर के लिए निश्चित मात्रा में अन्न आता था।

हस्तिकुण्डी के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि उस युग में युद्ध बहुत होते थे। सामान्यतः राज्य के विस्तार के लिए, राजा के प्रभुत्व को स्थापना के लिए और शरणागत की रक्षा करने के लिए युद्ध किए जाते थे। हस्तिकुण्डी के राजाओं ने

1. शिलालेख संख्या ३१८ श्लोक सं० १२।

गुजरात के राजाओं, चौहान राजकुमारों तथा चित्तौड़ के राजा धरणीवराह को शरण दी एवं उनकी रक्षा की। किसी राजा का मान मर्दन करने के लिए भी युद्ध होना सामान्य बात थी। हस्तिकुण्डी के राठौड़ों ने भी दुर्लभराज चौहान और धरणीवराह का मान मर्दित किया था।

सम्पूर्ण प्रजा का संरक्षण राजा का कर्त्तव्य होता है; इस नीति का निर्वाह हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूटों ने भी किया। जिस प्रकार सूर्य की कठोर किरणों से सन्तप्त लोग तापनिवारण हेतु विशालवृक्ष का आश्रय लेते हैं वैसे ही राजसमुदाय से अथवा अन्य किसी भी प्रकार से पीड़ित जनता को धवलराज ने शरण दी थी। राजा का सच्चरित्र होना अत्यावश्यक था, वह अनन्य उद्धारक और सत्कार्य के भार को वहन करने वाला माना जाता था।[1] राठौड़ राजा शीलवान, करुणाशील और दानवीर थे। वृद्ध होने पर वे निस्सङ्ग होकर अपने पुत्रों को राज्य सौंप दिया करते थे। राठौड़ धवल ने अपना राज्य अपने युवराज बालाप्रसाद को सहर्ष सौंपा था।[2]

राठौड़ अत्यन्त कुशल वास्तुविद् और नगर-निर्माता थे। उनकी राजधानी हस्तिकुण्डी कुबेर की अलका के समान समृद्ध थी। उनकी नीतिनिपुणता एवं प्रजापरायणता के कारण वह नगरी धनाढ्य पुरुषों से भरी थी। नगरी में बहुत सुन्दर भवन और देवालय बने हुए थे; उन पर स्वर्णकलश चमकते थे। शासकों ने प्रजा के मनोरंजन के लिए मनोहारी उद्यानों के बीच फव्वारों का भी निर्माण किया था।[3]

---

1. शिलालेख सं० ३१८, श्लोक सं० १४-१५।
2. वही, श्लोक सं० १५।
3. वही, श्लोक सं० २३-२४।

जनता शृङ्गारप्रिय थी। स्त्रियाँ बहुत शृङ्गार करती थी; वे आभूषणों से लदी रहती थीं। राजा के सदाचारी होने के कारण प्रजा भी सदाचारी थी इसलिए नगरी में स्त्रियों को भी किसी प्रकार का भय नहीं था। स्त्रियाँ शृङ्गार कर देवालयों में नृत्य भी किया करती थीं। समाज के केन्द्रस्थानों—मन्दिरों में गायन-वादन व नृत्य के कार्यक्रम आयोजित होते थे।

राज्य की कृषिव्यवस्था बहुत उन्नत थी। कृषि-उपज में अन्न, कपास और गन्ने की प्रचुरता थी। गन्ना अधिक होने के कारण यहाँ गन्ना पेलने की घाणियाँ भी थीं। गन्ने की बाड़ियों से गन्ना तोड़ कर खाने की मनाही नहीं थी। गन्ना अत्यन्त सरस और मधुर होता था। सम्भवतः गुड़ बनाने की परम्परा भी रही हो। पहाड़ों से मजीठ और गुग्गुल प्राप्त होते थे। अन्य पर्वतीय सम्पदाओं के दोहन की भी व्यवस्था रही होगी।

राजा और प्रजा दोनों के धर्मप्राण होने के कारण इस नगरी में साधु-सन्तों का आवागमन भी निरन्तर होता रहा। आचार्यों की प्रेरणा से दानी राजा जनहित के अनेक कार्य करते थे। हस्तिकुण्डी के राजाओं ने अपनी सच्चरित्रता एवं सदाशयता से लगातार पाँच पीढ़ियों तक प्रजा के सामने अनुपम आदर्श स्थापित किया था।

शिलालेख सं. ३१९ के श्लोक सं. ७ से यह ज्ञात होता है कि मन्दिर राजा एवं प्रजा के सम्मिलन के पुण्यस्थल थे। राजा जब भी कोई आज्ञा प्रसारित करना चाहता था तब वह

प्रजा को मन्दिर में एकत्र करता था। इस सम्मिलन में अन्य गाँवों के लोग भी साक्षी रूप में रहते थे।

देवद्रव्य तथा ज्ञानखाते के द्रव्य का उस समय भी आजकल जैसा ही रिवाज था। राता महावीर के प्रसिद्ध मन्दिर की आय के दो भाग देवद्रव्य में जाते थे एवं एक भाग ज्ञानमार्ग में खर्च होता था जिसका निर्णय गुरु अथवा आचार्य करते थे। इन द्रव्यों को खाने वालों का भला नहीं होता था। अतः राजा भी इसे दण्डनीय अपराध मानकर इनके दुरुपयोग से बचने का विधान करते थे।[1] मन्दिरों की प्रतिष्ठा के समय न्याय से उत्पन्न धन ही खर्च किया जाता था तभी वह फलदायी होता था।

तत्कालीन राजा व सामन्तवर्ग धार्मिक पक्षपात से रहित थे एवं मन्दिर की सुरक्षा तथा संभरण की व्यवस्था करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। राजा और प्रजा का यह धार्मिक रूप आज भी हस्तिकुण्डी के शिलालेखों के माध्यम से व्यक्त होकर उनकी यशोगाथा को उज्ज्वलतम बना रहा है।

1. शिलालेख सं० ३१८ श्लोक सं० १५–१६।

वि. सं. २००६
की
प्रतिष्ठा

वि.सं. १०५३ के पश्चात् मन्दिर के किसी बड़े जीर्णोद्धार के कोई प्रमाण नहीं मिलते। बाद के शिलालेखों से यह ज्ञात होता है कि छोटी-मोटी मरम्मतें तो होती रही होंगी। हस्तिकुण्डी के बहुत से शिलालेख तो इस कदर घिस गए हैं कि उन्हें पढ़ा भी नहीं जा सकता। कतिपय शिलालेख तो काल की अतल गहराई में समा चुके हैं। समय-समय पर महान् आचार्यों ने इस मन्दिर की यात्रा की एवं इसके रख-रखाव की व्यवस्था के लिए उपदेश किया।

वि.सं. १९९९ तक यह मन्दिर लगभग खण्डहर ही हो गया था। यहाँ तक कि गर्भगृह भी जीर्ण-शीर्ण हो चुका था परन्तु पबासन (भगवान के विराजमान होने की पीठिका) को अधर (निराधार) रख कर उसका नवनिर्माण कैसे किया जाए? यह समस्या थी। इस दुष्कर कार्य को पूरा किया आबूरोड के रेलवे ठेकेदार श्री रणछोड़दासजी ने। उन्होंने अपने कौशल एवं बुद्धिबल से पबासन को अधर रख उसके नीचे २१ फुट की नींव खुदवाई। उस समय गर्भगृह का एक पाट अचानक

नीचे गिर पड़ा पर मूर्ति बाल-बाल बच गई। यह शुभ लक्षण था। मन्दिर का प्राचीनता को कायम रखते हुए उसे नया रूप देने में बीजापुर के श्रीसंघ के सहयोग से दो धर्मनिष्ठ व्यक्तियों ने बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इनके नाम हैं सर्व श्री जवेरचन्दजी चन्दुलालजी एवं हजारीमलजी चन्द्रभाणजी। इन दोनों सज्जनों ने बीजापुर के तत्कालीन धर्मप्रिय ठाकुर साहब श्री जोगसिंहजी एवं उनके पुत्र देवीसिंहजी से अच्छा सहयोग प्राप्त किया। ये दोनों श्रावक-बन्धु इतिहासप्रेमी रहे हैं एवं इन्होंने समय-समय पर हस्तिकुण्डी विषयक लेख 'सेवा समाज' आदि पत्र-पत्रिकाओं में लिखे हैं। इन्होंने मन्दिर के विषय में जो सामग्री संगृहीत की थी मैंने उसका उपयोग किया है। मैं एतदर्थ इनका आभारी हूँ और इन्हें साधुवाद देता हूँ।

बीजापुर-निवासियों ने माघ सुदी १० संवत् १९९८ तदनुसार २७-१-४२ के दिन बम्बई में मन्दिरजी के जीर्णोद्धार के लिए एक समिति बनाई थी जिसके निम्नलिखित सदस्य थे—

१. शाह जवेरचन्दजी चन्दुलालजी (चन्दुलाल खुशाल-चन्दजी जवेरी), बीजापुर
२. शाह हजारीमलजी किशनाजी
३. शाह हीराचन्दजी चन्दाजी
४. शाह ताराचन्दजी कुपाजी
५. शाह हजारीमलजी भेरांजी
६ शाह प्रेमचन्दजी गोमाजी, बाली
७. शाह जवेरचन्दजी उमाजी
८. शाह जुहारमलजी प्रतापजी
९. शाह उम्मेदमलजी हिम्मतमलजी

समिति ने जीर्णोद्धार के लिए धनराशि एकत्र करना प्रारम्भ किया। इस महान् कार्य के लिए श्री मद्रास श्वेताम्बर जैन संघ, बेंगलोर जैन सङ्घ, आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी बम्बई, श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ जैन पेढ़ी, श्री गोड़ी पार्श्वनाथ जैन मन्दिर पायधुनी, बम्बई एवं अन्य महानुभावों ने महती सहायता की। श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ जैन पेढ़ी ने मन्दिरजी के रङ्ग-मण्डप के फर्श के गलीचे के लिए एवं तहखाने के लिए सङ्गमरमर का पत्थर भिजवाया। विक्रमी सं. २००१ में जीर्णोद्धार का काम शुरू हुआ एवं विक्रमी सं. २००६ में मूल मन्दिरजी का काम पूरा हुआ।

उस समय पंजाब-केसरी युगवीर आचार्य महाराज श्रीमद् विजयवल्लभसूरीश्वरजी आदि का चातुर्मास गोड़वाड़ के सादड़ी नगर में था। बीजापुर श्रीसंघ ने सादड़ी जाकर आचार्य महाराज से विनती की कि श्री हस्तिकुण्डी के राता महावीरजी के मूल मन्दिरजी का जीर्णोद्धार पूरा हो चुका है। अब अञ्जनशलाका तथा प्रतिष्ठा का महोत्सव सम्पन्न करना है। आचार्य महाराज ने श्रीसंघ की विनती स्वीकार की। चातुर्मास समाप्त होने पर कार्तिक शुक्ला १५ के बाद उन्होंने बीजापुर की तरफ विहार किया। बीजापुर श्रीसङ्घ का हर्षोल्लास असीमित था। सर्वत्र गुरुदेव के प्रति आभार व्यक्त किया जा रहा था। बीजापुर श्रीसङ्घ ने शिष्य मण्डली के साथ आचार्यश्री का भव्य स्वागत किया। आचार्यदेव के साथ आचार्य महाराज श्री ललितसूरीश्वरजी, आचार्य महाराज श्री विद्यासूरीश्वरजी पंन्यासजी श्री समुद्रविजयजी, पंन्यासजी श्री पूर्णानन्दविजयजी, मुनिराज श्री विचारविजयजी, कपूरविजयजी, शिवविजयजी, [illegible]विजयजी, विशारदविजयजी,

इन्दुविजयजी, जनकविजयजी, प्रकाशविजयजी, रामविजयजी, बलवन्तविजयजी, जयविजयजी आदि साधुओं का समुदाय था।

बरकाणा एवं फालना के बैंड एवं मण्डली भी इस अवसर पर उपस्थित थे। राजस्थान, गुजरात, मध्यभारत एवं पंजाब प्रान्त के बहुत से महानुभाव इस अवसर पर पधारे थे।

विक्रम सं. २००६ की मार्गशीर्ष वदी १४, शनिवार को कुम्भ-स्थापना, दीप स्थापना, नवग्रह-नन्दावर्त-पूजन, ध्वज, कलश पूजन, जलयात्रा, बृहत् शान्ति स्नात्रादि के साथ १२५ जिन-बिम्बों की अञ्जनशलाका व प्रतिष्ठा विधि-विधान सहित सम्पन्न हुई। राता महावीरजी के जिनमन्दिर की प्रतिष्टा व अञ्जनशलाका मार्गशीर्ष शुक्ला ६ शुक्रवार को हुई। इस अवसर पर मन्दिरजी के नीचे के तहखाने में पाटल (गुलाबी) वर्ण के आरस पत्थर की महावीर भगवान की एक विशाल प्रतिमा मार्गशीर्ष शुक्ला १० को प्रतिष्ठित हुई। मार्गशीर्ष शुक्ला १० बुधवार को बीजापुर ग्राम में स्थित सम्भवनाथजी एवं चन्द्रप्रभुजी के जिनमन्दिरों की प्रतिष्ठा हुई। इसी दिन तीन पुण्यशाली आत्माओं — १. सादड़ीनिवासी श्री रतनचन्दजी बम्बोलो, २. लाठारानिवासी श्री श्रीचन्दजी और ३. बेड़ा निवासी श्री शिवलालजी, ने भगवती दीक्षा अङ्गीकार की।

साधुपने में इनके नाम मुनिश्री न्यायविजयजी, प्रीतिविजयजी व हेमविजयजी रखे गए। प्रीतिविजयजी एवं हेमविजयजी का स्वर्गवास हो गया है। पंन्यासजी न्यायविजयजी शासन की प्रभावना बढ़ा रहे हैं।

यहाँ प्रतिष्ठादि का शुभ कार्य विधिवत् सम्पन्न कर गुरुदेव ने गोड़वाड़ श्रीसङ्घ की विनती पर श्री जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए फालना की तरफ विहार किया।

विक्रमी संवत् २०२६ में आचार्य विजयसमुद्रसूरीश्वरजी महाराज का चातुर्मास लुणावा नगर में था। बीजापुर श्रीसंघ ने गुरुदेव से विनती की कि राता महावीरजी में अभिषेक एवं अष्टोत्तरी महोत्सव का मंगल कार्य करवाना है। आचार्यदेव ने बीजापुर श्रीसंघ की विनती स्वीकार की। मिति मार्गशीर्ष कृष्णा ४ को गुरु महाराज बीजापुर पधारे। उनके साथ मरुधररत्न मुनि महाराज श्री वल्लभदत्तविजयजी, पंन्यासजी श्री जयविजयजी पंजाबी, पंन्यासजी न्यायविजयजी, पू. मुनिराज श्री वसन्तविजयजी, शान्तिविजयजी, पद्मविजयजी, नवचन्द्र-विजयजी, अनेकांतविजयजी, जयानन्दविजयजी, धर्मधुरंविजय-जी, नित्यानन्दविजयजी आदि मुनिमण्डल था। इस अवसर पर साध्वीजी श्रीप्रभाश्रीजी, सुभद्राश्रीजी,कनकप्रभाश्रीजी, प्रवीण-श्रीजी, चिंतामणिश्रीजी, चिदानन्दश्रीजी आदि साध्वी समु-दाय भी साथ था।

आचार्य श्रीमद्विजयजम्बूसूरिजी का चातुर्मास उस समय सेवाड़ी नगर में था। श्रीसंघ ने उनसे भी विनती की। वे भी राता महावीरजी पधारे। मिति मार्गशीर्ष कृष्णा ५ विक्रमी संवत् २०२६ को अष्टोत्तरी महोत्सव का शुभारम्भ हुआ। आठों दिन खूब धूमधाम से महोत्सव हुआ। अन्तिम दिन अभिषेक महोत्सव हुआ। इसी दिन गुरु-मन्दिर में श्रीमद् विजयवल्लभसूरीश्वरजी महाराज की (गुरु) प्रतिमा की

प्रतिष्ठा आचार्यदेव के पट्टधर शिष्य आचार्य विजयसमुद्रसूरीश्वरजी के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। मन्दिर के अन्दर आचार्यदेव श्री यशोभद्रसूरीश्वरजी म., वासुदेवाचार्यजी एवं क्षमाऋषिजी महाराज के पट की भी प्रतिष्ठा इसी दिन हुई।

विक्रमी सं. २००६ का शिलालेख

श्री महावीराय नमः

वि. सं. २००६ मार्गशीर्ष शुक्ला ६ तिथौ हस्तिकुण्डीतीर्थे श्री न्यायाम्भोनिधि श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वराणां पट्टधर-पण्डितैः पञ्चनदपञ्चाननैः ज्ञानभानुप्रकाशकैः युगवीरवरैः श्रीमद्विजयवल्लभसूरीश्वरैः प्राणप्रतिष्ठा-नयनाञ्जनशलाका सम्पादिता ।। श्रीरस्तु ।।

आइए, मन्दिर चलें

बीजापुर से जो सड़क उदयपुर जा रही है उसी पर तो हस्तिकुण्डी का यह प्राचीन तीर्थ स्थित है। चौंकिए नहीं, बीजापुर से उदयपुर केवल ४० मील दूर है और पक्की सड़क बन रही है। थोड़े दिनों में यहाँ होकर उदयपुर के लिए बसें चलेंगी। देखिये, सड़क के आसपास कितने सुन्दर दृश्य दिखाई दे रहे हैं! सामने अरावली की पर्वतमाला का सौन्दर्य देखते ही बनता है। क्या कहा? मन्दिर केवल दो मील पर ही तो है फिर भी क्यों नहीं दिखता? महाशयजी! मन्दिर तो पर्वत की तलहटी में आया हुआ है एवं वृक्षों के झुरमुटों में छिपा हुआ है। देखिए, नदी में ये जो सफेद पत्थर दीख रहे हैं न, ये एक बावड़ी के खण्डहर हैं। बावड़ी नदी में दब गई है। ऐसी ही नौ बावड़ियाँ एवं आठ पनघट यहाँ आसपास दबे पड़े हैं। इस विषय में यहाँ एक उक्ति प्रसिद्ध है "आठ कुआ, नव बावड़ी, सोलह सौ पणिहार" आठ कुओं एवं नव बावड़ियों पर लगातार सोलह सौ पणिहारियाँ यहाँ पानी भरा करती थीं। बस, यही मुख्य दरवाजा है। इसके अन्दर कुल १३॥ बीघा जमीन है। बाईं तरफ यह गुरु-मन्दिर है। इसमें श्रीमद्विजयवल्लभसूरीश्वरजी की गुरु-प्रतिमा की स्थापना व प्रतिष्ठा संवत् २०२६ के मार्गशीर्ष मास में उनके पट्टधर

आचार्य श्रीमद्विजयसमुद्रसूरीश्वरजी महाराज के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुई थी। पास ही यह जो उपाश्रय है उसे बनवाने वाले हैं बीजापुरनिवासी शाह हंसराजजी नत्थूजी, फर्म चन्दुलाल खुशालचन्दजी, बम्बई। इसमें साधु-मुनिराजों के ठहरने का उत्तम प्रबन्ध है। बाईं तरफ आगे यह जो यात्री भवन बना हुआ है, इसे बनवाने में कई दानवीरों ने सहायता की है, उनके नाम इन पट्टियों पर लिखे हुए हैं।

दाहिनी तरफ के राता महावीर (राष्ट्रकूट) वर्द्धमान जैन यात्री-भवन को बनवाने में कई दानवीरों ने सहयोग किया है जिनके नाम वहाँ लिखे हुए हैं। मन्दिरजी की पेढ़ी इसी भवन में स्थित है। भोजनशाला एवं आयंबिल खाता भी इसी में चल रहा है। इन दोनों धर्मशालाओं में कमरों के लिए कई दानदाताओं ने योगदान किया है।

मुख्य मन्दिरजी के सामने यह जो छोटासा मन्दिर है यह महावीर यक्ष का है एवं बहुत पुराना है। इसे भी नया बनाकर ऊँचा लेने की योजना है। बस, अब मन्दिर का मुख्य-द्वार आ गया। मुख्यद्वार के अन्दर ऊपर की तरफ ये जो खाली स्थान दिखाई देते हैं इन्हीं में वह १०५३ वि. का प्रसिद्ध शिला-लेख लगा हुआ था जिसे कैप्टेन बर्ट, प्रो. किलहोर्न व पं. राम-करण आसोपा उखड़वा कर ले गए। यह शिलालेख अब अजमेर के म्यूजियम में है एवं इसकी क्रम संख्या २५८ है। राठौड़ों के इतिहास पर यह प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करता है।

इस मन्दिर में कुल २४ देवकुलिकाएँ हैं। द्वार के दोनों ओर ६-६ व आजू-बाजू में ६-६। द्वार के दोनों ओर की इन १२ देवकुलिकाओं पर १२ शिखर हैं जो दूर से यात्रियों को

मन्दिर का मुख्य द्वार

मन्दिर । पृष्ठभूमि व परिसर

गर्भगृह में प्रतिष्ठित भगवान महावीर की प्रवालवर्ण प्रतिमा

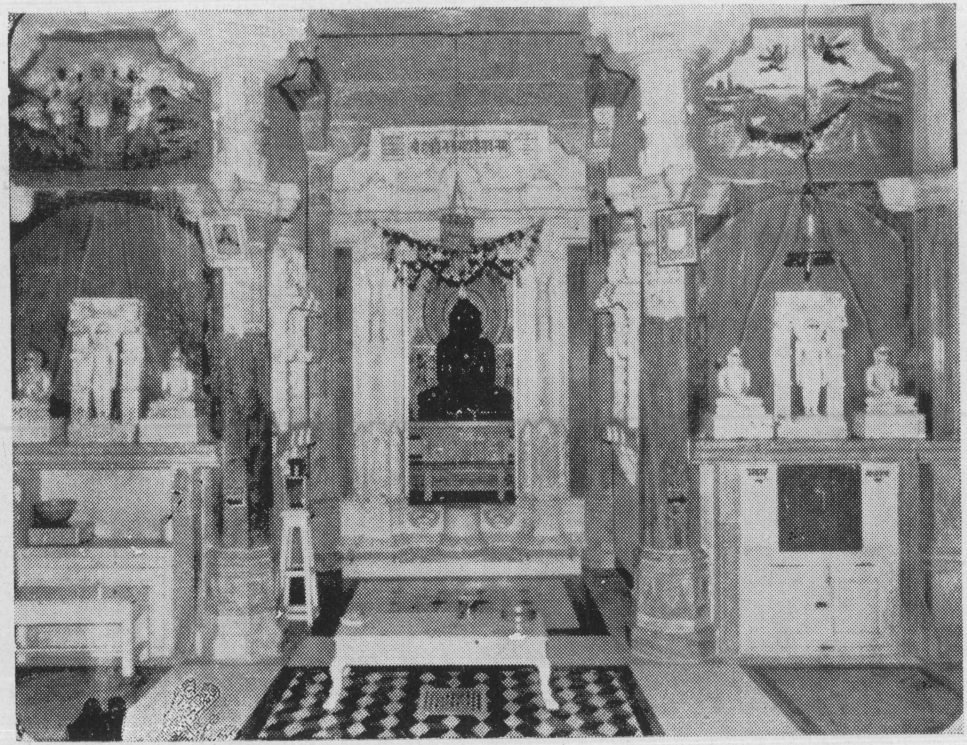

मन्दिर का अन्तरङ्ग दर्शन

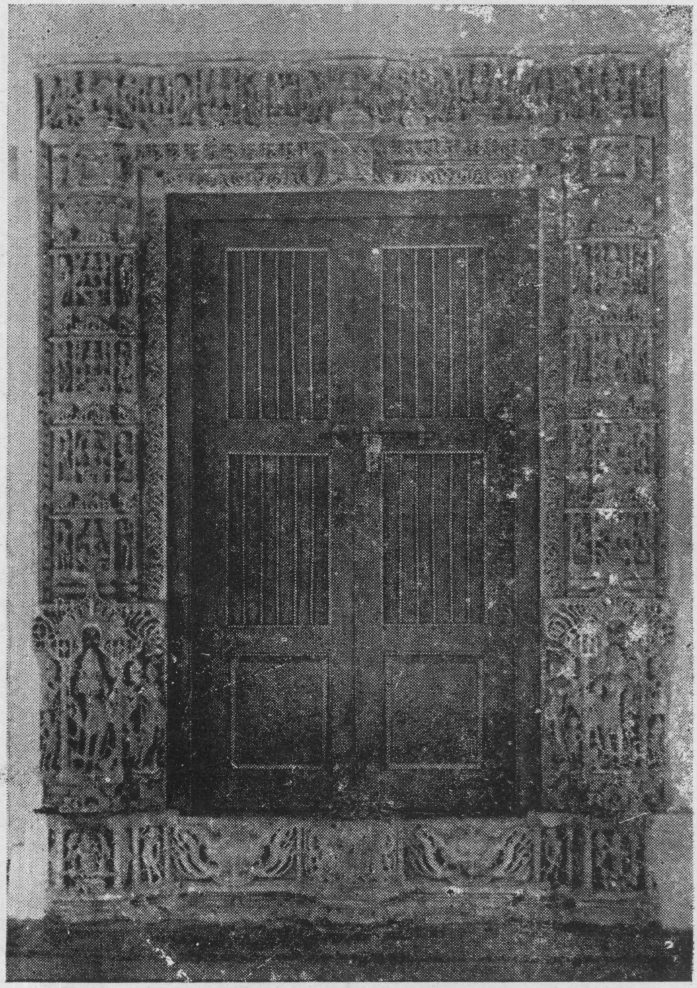

सं० १०५३ का रूपशाखा द्वार

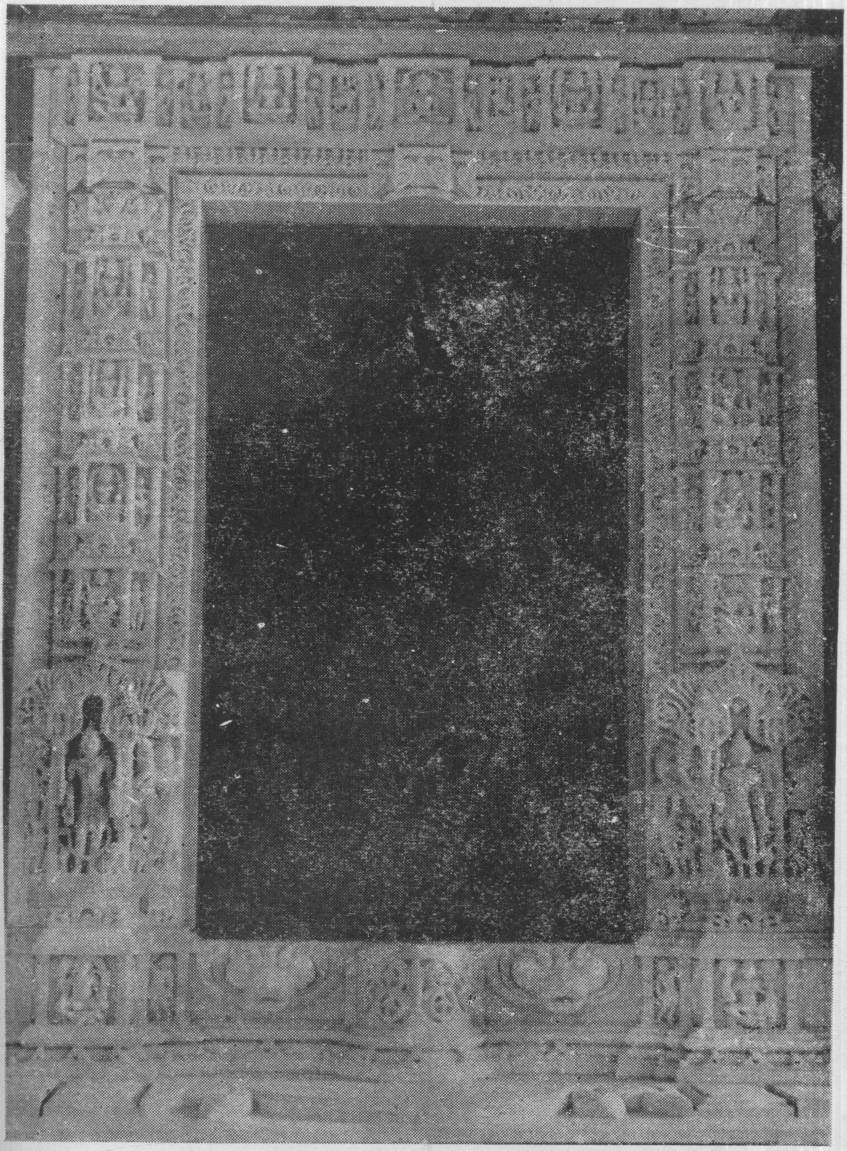

वर्तमान रूपशाखा द्वार

मन्दिर के सामने
महावीर यक्ष की प्रतिमा

तीर्थप्रतिष्ठा के समय
दीक्षित मुनित्रय

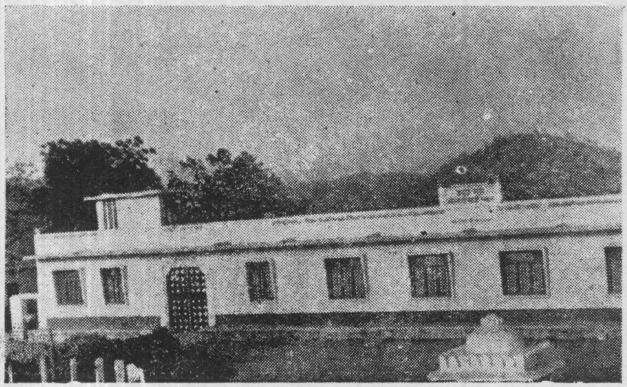

यात्री भवन

अपार शान्ति देकर उनका मन मोह लेते हैं। हरियालीसे ढ़की हुई पर्वतमाला की पृष्ठभूमि में ये श्वेत शिखर व पताका एक अपूर्व दृश्य उपस्थित करते हैं। हां, तो बाईं तरफ जो अलग से छत्री दिखाई दे रही है यह यशोभद्रसूरिजी की देवकुलिका है।

श्री यशोभद्रसूरीश्वरजी ९७३ वि. में मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाने वाले विदग्धराज के गुरु थे। इस मूर्ति की स्थापना सं. १३४४ वि. में आसोज सुदी ११ को हुई। इसी छत्री में पादुकाएँ भी स्थापित हैं। मूर्ति के दोनों हाथ जोड़े हुए हैं। यह जो ईंटों से जड़ा हुआ स्थान दिखाई दे रहा है इस स्थान पर ५० हजार को लागत से एक खेला-मण्डप बनेगा।

मन्दिर के रंग-मण्डप में दो कलापूर्ण आले हैं जिनमें बायें हाथ के आले में मातंग यक्ष और दाहिने हाथ के आले में सिद्धायिका देवी की प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं। इन आलों का नव-निर्माण हुआ है। पुराने आले तो और जगह स्थित हैं जिनके बारे में समय पर बताऊँगा। इन आलों के स्थान पर ही विक्रमी सं. १२९९ में रत्नप्रभु उपाध्यायजी के शिष्य पूर्णचन्द्रजी उपाध्याय के उपदेश से श्रावकों ने दो आले बनवाए थे। यह रङ्ग-मण्डप नया ही है पर विक्रमी सं. १०११ में ज्येष्ठ वदी ५ को शान्तिभद्राचार्यजी के उपदेश से श्रावकों ने वामक नामक सेलावट के द्वारा बनवाया था। इसी दिन यशोभद्राचार्यजी को सूरि पद की प्राप्ति हुई थी। राता महावीरजी में इसकी जयन्ती मनाई गई होगी क्योंकि यशोभद्रसूरिजी को सूरि पद की प्राप्ति तो ९६८ वि. में मुण्डारा नगर में हुई थी। और यह है वह भगवान महावीर की ५२ इञ्च की भव्य प्रतिमा। इस पर लाल विलेपन है अतः इस मन्दिर का नाम

राता महावीरजी पड़ा। लाल रंग अनुराग का प्रतीक है और भगवान महावीर की यह रक्त वर्ण की प्रतिमा समग्र संसार पर अपना अनुग्रह प्रकट कर रही है। इसके नीचे जो लांछन है वह अपनी विशेषता रखता है। इसके पीछे का आकार तो सिंह का है एवं मुख हस्ती का है। अर्थात् यह गजसिंह का लांछन भगवान महावीर के लांछन सिंह व हस्तितुण्डी में हस्तियों की बहुतायत की ओर संकेत करता है। सिंह के हाथी का मुख होने के कारण ही इस नगरी को हस्तिकुण्डी भी कहते हैं और भगवान का प्रभासन तो देखा ही नहीं, इसके दोनों तरफ सिंह व बीच में हाथी के मुख हैं। केन्द्र में देवी की एक प्रतिमा है। यह अधिष्ठायिका देवी है। यहाँ भी हाथी के मुख एवं सिंहों को एक साथ रखा गया है। यह प्रभासन तो नया है २००६ वि. का बना हुआ। पुराना इसी तरह का बना हुआ प्रभासन तो, जिस पर विक्रमी सं. १०५३ का लेख अङ्कित है, गर्भगृह के पश्चिमी दरवाजे के सामने स्थित कमरे में सुरक्षित है।

अब आइए, भमती (प्रदक्षिणा) में पश्चिम की तरफ चलें। कोट में यक्षों की पुरानी मूर्तियाँ हैं। पास के कमरे में एक पट है जिस पर यशोभद्राचार्य, बलिभद्राचार्य एवं क्षमाऋषि की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। इन तीनों आचार्यों का सम्बन्ध हस्तिकुण्डी से रहा है। इसकी प्रतिष्ठा भी आचार्य समुद्रसूरिजी ने सं. २०२६ के मार्गशीर्ष महीने में की थी। अब देखिये यह गम्भारे के पश्चिमी दरवाजे के सामने का कमरा! इसकी चौखट व द्वार कितने बढ़िया खुदे हुए हैं! ये दोनों ही मन्दिर के रंग-मण्डप से लगे गम्भारे में लगे हुए थे। जीर्णोद्धार के समय इनके स्थान पर नये लगवा

दिये गए एवं इनको यहाँ जड़ दिया गया। बाईं तरफ सिन्दूर से लिपटी हुई जो खण्डित प्रतिमा है, यह रेवती दोष के अधिष्ठायक देवता की प्रतिमा है जिसे बलिभद्राचार्य ने स्थापित किया था। यह पबासन है जिस पर १०५३ विक्रमी का लेख है। इस पबासन में दोनों तरफ सिंह, बीच में हाथियों के मुख एवं केन्द्र में अधिष्ठायिका देवी की प्रतिमा है। यही पबासन हमें यह बताता है कि १०५३ वि. में जिस मूर्ति की स्थापना की गई वह ऋषभदेव भगवान की थी पर सिंह का लांछन यह बताता है कि मन्दिर तो महावीर भगवान का ही था। ऋषभदेव भगवान का लांछन तो वृषभ है जो इस पबासन में कहीं भी दिखाई नहीं देता। पालथी मारे एक टूटी हुई प्रतिमा है जिसके नीचे सिंह का लांछन है; यह प्रतिमा महावीर भगवान की है और यह आला उन दो आलों में से एक है जिन्हें सं. १२९९ में पूर्णचन्द्रजी उपाध्याय ने स्थापित करवाया था। इसमें गणेश यक्ष की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इस कमरे में दो शिलालेख भी दीवार में गड़े हुए हैं। मन्दिर में स्थान-स्थान पर पुराने अवशेष जड़वा दिये गये हैं ताकि नवीनता के बीच भी मन्दिर की प्राचीनता दिखाई दे।

आइए, आपको तहखाना भी दिखा दूं। इस तहखाने के लिए आरस का सारा पत्थर शंखेश्वर पार्श्वनाथ की पेढ़ी से आया है। यह सामने जो पाटल (गुलाबी) वर्ण की प्रतिमा दिखाई दे रही है यह महावीर भगवान की है। यह पत्थर ही गुलाबी रङ्ग का है। इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा भी आचार्य विजयवल्लभसूरिजी ने की थी।

हाँ, एक बात तो बताना भूल ही गया। रङ्गमण्डप के गुम्बज में जो कारीगरी है वह बहुत सुन्दर है। जरा, उसका

मिलान राणकपुर की कारीगरी से तो कीजियेगा।

सामने पहाड़ी पर जो खण्डहर दिखाई देते हैं वे राज-महलों के हैं। टीलों पर पत्थरों एवं मलबे के ढेर पुरानी नगरी की याद दिला रहे हैं। पहाड़ की एक टेकरी से दूसरी तक दिखाई देने वाली यह पंक्ति नगरी का कोट है जो मुक्तेश्वर महादेव के मन्दिर तक एवं हरगंगा देवी के मन्दिर तक लम्बा गया हुआ है। मन्दिर के पास ये जो खण्डहर दिखाई देते हैं वे पंचतीर्थी महादेव के मन्दिर के हैं। पंचतीर्थी का अर्थ है महादेव के पांच मन्दिरों का एक साथ होना। मन्दिर बिल्कुल टूट गया है एवं केवल दो देवकुलिकाओं में भगवान महादेव की प्रतिष्ठा है। गम्भारे की चोखट पर एक लेख तो अवश्य खुदा हुआ है पर वह पढ़ने में नहीं आता है।

तो महावीरजी के इस मन्दिर के जीर्णोद्धार में लगभग ५,००,००० (पाँच लाख) रुपए खर्च हुए। अभी निर्माण-कार्य शुरू होने वाला है। मन्दिर की सुन्दरता के लिए अब पेड़ लगाये जा रहे हैं। उदयपुर की यह सड़क बन जाने के बाद यहाँ यात्रियों का आवागमन बढ़ जायेगा एवं मन्दिर की ख्याति दूर-दूर तक फैल जाएगी।

हाँ, एक महत्त्वपूर्ण सूचना तो रह ही गई। प्रति वर्ष चैत्र सुदी १० को यहाँ एक विशाल मेला भरता है। पहाड़ों में रहने वाले आदिवासी, भील, गरासिये बहुत संख्या में यहाँ आते हैं। वे प्रभु के दरबार में नाचते-गाते हैं और प्रभु की बहुत मान्यता एवं भावना रखते हैं। उनके नाच, गरबे एवं गीत बड़े अच्छे होते हैं। इस अवसर पर बड़ी दूर-दूर से यात्री आते हैं एवं भगवान के दर्शनों के लाभ के साथ इस मनोरञ्जन का भी आनन्द लेते हैं। तो, इस वर्ष आप भी जरूर पधारें। △

शिलालेख

शिलालेख सं. ३१८ (१०५३ वि.)

हस्तिकुण्डी के प्राचीन वैभव के परिचायक शिलालेखों के श्लोक यहां सानुवाद प्रस्तुत हैं—

विरके (?)...पजे (?) [रक्षा संस्था ?] जवस्तवः ।
परिशासतुना...परा [र्थख्या ?] पना जिनाः ॥१॥

श्लोक अस्पष्ट है ।

ते वः पांतु [जिना] विनामसम (ये यत्पा) दपद्मोन्मुख-प्रेंखासंख्यमयूर [शे] खरनखश्रेणीषु बिम्बोदयात् ? प्रापैकादशभिर्गुणं दशशती शक्रस्य शुभंदृशो । कस्य स्याद् गुणकारको न यदि वा स्वच्छात्मनां संगमः ॥२॥

अन्वय–**विनामसमये ते जिना वः पांतु यत्पाद-पद्मोन्मुख-शुभंदृशो शक्रस्य दशशती प्रेंखा मयूखाः शेखरनखश्रेणीषु बिम्बोदयात् प्राप एकादशभिः गुणं यदि स्वच्छात्मनां संगमः कस्य गुणकारको न स्यात् ।**

अर्थात्—वे जिनेश्वर देव तुम्हारी रक्षा करें जिनको प्रणाम करते समय उनके चरण-कमलों के नखों में प्रतिबिम्बित इन्द्र की हजार आँखें ग्यारह हजार हो जाती हैं क्योंकि निर्मल आत्माओं के साथ मिलन किनके लिए गुणकारी नहीं होता अर्थात् सब के लिए गुणकारी होता है ।।२।।

.....वत.....नासत्करीलो ? [प] शोभितः ।
सुशेखर.....लौ, मूर्ध्नि रूढ़ो महीभृतां ।।५।।

अन्वय–**महीभृतां मूर्ध्नि रूढ़ः ।**

शेष अस्पष्ट है ।

अर्थ–राजाओं के सिर पर सवार अर्थात् राजाओं को जीतने वाला ।।३।।

अभिविभ्रद्रुचिं कान्तां, सावित्रीं चतुराननः ।
हरिवर्म्मा बभूवात्र, भूविभुर्भुवनाधिकः ।।४।।

अर्थ—सर्वाङ्ग सुन्दर सावित्री के पति ब्रह्मा की तरह जगत् में प्रसिद्ध हरिवर्म्मा पृथ्वी का पति हुआ । उसकी रानी का नाम रुचि था ।।४।।

सकललोकविलोचनपंकजस्फुरदनम्बुदबालदिवाकरः ।
रिपुवधूवदनेन्दुहृतद्युतिः समुत्पादि विदग्धनृपस्ततः ।५।

अर्थ—सम्पूर्ण संसार के नेत्र कमल को खिलाने वाले मेघरहित बालसूर्य के समान हरिवर्मा के विदग्धराज उत्पन्न

हुआ। जैसे बालसूर्य कमलों की प्रतिपक्षी कमलिनियों की प्रभा का हरण कर लेता है वैसे ही विदग्ध ने भी शत्रुओं की स्त्रियों के मुख की कान्ति का हरण कर लिया अर्थात् उसने अपने समस्त प्रतिपक्षियों को पराजित कर दिया ।।५।।

स्वाचार्यैर्यो रुचिरवचनैर्वासुदेवाभिधानै--
र्बोधं नीतो दिनकरकरैर्नीरजन्माकरो वा।
पूर्वं जैनं निजमिव यशोकारयद्धस्तिकुण्ड्यां,
रम्यं हम्म्यं गुरुहिमगिरेः शृंगशृंगारहारि ।।६।।

जैसे सूर्य की किरणों से नीरजन्मा कमल विकसित होता है वैसे ही वासुदेवाचार्य नाम के आचार्य के सुन्दर उपदेश से विदग्धराज को ज्ञान प्राप्त हुआ। उसने अपने हस्तिकुण्डी नगर में हिमालय के शिखरों का भी मान मर्दन करने वाला तथा अपने ऊंचे यश के समान उच्च शिखर वाला अपूर्व एवं अनुपम जिन मन्दिर बनवाया ।।६।।

दानेन तुलितबलिना तुलादिदानस्य येन देवाय।
भागद्वयं व्यतीर्यत भागश्चाचार्यवर्याय ।।७।।

वह राजा दान देने में बलि के समान है। वह अपने द्वारा दिए गए तुलादान के दो भाग देवता के लिए व एक भाग आचार्यप्रवर को दिया करता था ।।७।।

तस्मादभूच्छुद्धसत्त्वो मम्मटाख्यो महीपतिः।
समुद्रविजयो श्लाघ्यतरवारिः सदूर्म्मिकः ।।८।।

उस विदग्ध राजा के महान् पराक्रमी मम्मट नाम का राजा हुआ। तलवार के धनी श्रेष्ठ भावों वाले इस राजा ने समुद्रपर्यन्त विजय प्राप्त की। अथवा इस राजा ने अपनी शुद्ध शक्ति से समुद्र को भी जीत लिया। समुद्र की लहरें तो सामान्य हैं पर इसके हृदय-सागर की लहरें सतोगुण से युक्त हैं। समुद्र का पानी तो खारा है पर इसका तेज तो प्रशंसनीय है ।।८।।

तस्मादसमः समजनि [समस्त] जनजनितलोचनानन्दः।
धवलो वसुधाव्यापी चन्द्रादिव चन्द्रिकानिकरः ।।९।।

जिस प्रकार चन्द्रमा से समस्त पृथ्वी को आलोकित करने वाली चाँदनी का समूह उत्पन्न होता है वैसे ही धवल यशवाले उस मम्मट राजा के प्रजा को आनन्दित करने वाला अनुपम धवल नाम का कुमार उत्पन्न हुआ ।।९।।

भंक्त्वा घाटं घटाभिः प्रकटमिव मदं मेदपाटे भटानां,
जन्ये राजन्यजन्ये जनयति जनताजं रणं मुञ्जराजे[1]।
.....प्रणष्टे हरिण इव भिया गूर्जरेशे विनष्टे,
तत्सैन्यानां सशरण्यो हरिरिव शरणे यः सुराणां बभूव
।।१०।।

---

1. १०२९ विक्रमी में मालवा के मुंज ने चित्तौड़ पर कब्जा किया। मुंज की मृत्यु वि. सं. १०५० से १०५४ के मध्य हुई। उसकी सभा के पंडित धनपाल ने तिलकमजरी लिखी।

गुजरात के राजा व मेवाड़ के राजा मुञ्जराज में भयङ्कर युद्ध हुआ। उसमें हाथियों के संघर्ष से, उनके कपोल-प्रदेशों के कटने से मद झरने लगा। गुजरात का राजा भयभीत होकर युद्ध में पराजित हो गया एवं हरिणों की तरह पलायन करने वाले उसके सैनिकों को धवलराज ने उसी तरह शरण दी जिस प्रकार देवताओं को भगवान विष्णु शरण देते हैं।

श्रीमद्दुर्लभराज[1] भूभुजिभुजैर्भुंजत्यभंगां भुवं,
दंडैर्मण्डनशौण्डचण्डसुभटैस्तस्याभिभूतं विभुः।
यो दैत्यैरिव तारकप्रभृतिभिः श्रीमान्महेन्द्रःपुरा,
सेनानीरिव नीतिपौरुषपरोऽनैषीत्परां निर्वृतिम् ।११।

नीति-पौरुष सम्पन्न इस धवल राजा ने अखंड पृथ्वी का अपनी भुजाओं से भोग करने वाले श्रीमान् दुर्लभराज के दण्डधारी योद्धाओं के द्वारा पराजित श्रीमान् महेन्द्रराजा को उसी प्रकार सुख दिया जिस प्रकार प्राचीनकाल में तारकासुर आदि राक्षसों से भयभीत इन्द्र को स्वामी कार्तिकेय ने सुख प्रदान किया था ।।११।।

यं मूलादुन्मूलयदुरुबलः श्रीमूलराजो नृपो,
दर्प्पान्धो धरणीवराहनृपति यद्वद्विपः पादपं।
आयातं भुवि कांदिशीकमभिको यस्तंशरण्यो दधौ,
द्रंष्ट्रायामिव रूढमूढमहिमा कोलो महीमण्डलम् ।।१२।।

---

1. प्रो. किलहॉर्न दुर्लभराज को चौहानवंश राजा विग्रहराज का भाई मानते हैं। बिजोलिया एवं कीनसरिया के शिलालेखों में दुर्लभराज का नाम आया हुआ है। महेन्द्रराज नाड़लाई के लेख के अनुसार चौहान लक्ष्मण (लाखणसी) का पौत्र और विग्रहपाल का पुत्र होना चाहिए। यह लड़ाई काका-भतीजे की लड़ाई थी।

मूलराज ने विशाल सेना वाले धमण्डी धरणीवराह राजा[1] को उसी तरह मूल से उखाड़ दिया जिस प्रकार हाथी पेड़ को मूल से उखाड़ देता है। पर अपनी शरण में आने पर धवल राजा ने धरणीवराह राजा को उसी तरह शरण दी थी जिस प्रकार वराहवतार ने अपनी दाढों से पृथ्वीमण्डल को शरण देकर उबारा था ।।१२।।

इत्थं पृथ्वीभर्तृभिर्नाथमानैः सा...सुस्थितंरास्थितो यः।
पाथोनाथो वा विपक्षात्स्वपक्षं रक्षाकांक्षैरक्षणे बद्धकक्षः १३

इस प्रकार वह धवलराज, राजाओं से त्राण चाहने वाले राजाओं को शरण देने वाला अथवा विपक्ष से स्वपक्ष को बचाने वाला व रक्षितों के रक्षण में तत्पर है ।।१३।।

---

1. यह धरणीवराह चित्तौड़ का राजा था (कुम्भा, पृष्ठ १०,रामवल्लभ सोमानी)। मूलराज सोलंकी पाटण की गद्दी पर वि.सं. १०१७ में बैठा। यह बड़ा प्रतापी राजा था। मूलराज ने वि.सं. १०२९ में चित्तौड़ पर कब्जा किया था। यह धरणीवराह परमार नरेश नहीं है क्योंकि धरणीवराह धारावर्ष परमार आबू के परमार राजा कृष्णराज के पुत्र यशोधवल का पुत्र था (कांठल का शिला-लेख, अजमेर म्यूजियम)। कृष्णराज ११२४ वि. सं में आबू पर राज्य करता था। धरणीवराह यह नहीं है क्योंकि धरणीवराह परमार के साथ मूलराज का कोई युद्ध नहीं हुआ। नाडोल के केल्हण की पुत्री शृङ्गारदेवी का विवाह परमार धारावर्ष के साथ हुआ। सिरोही के अन्तर्गत झाड़ोली ग्राम के आसोज सुदी ७ बुधवार सं १२५५ के शिलालेख के अनुसार धारावर्ष की पत्नी मन्दिर में दर्शनार्थ आई थी एवं मन्दिर के खर्च के लिए एक बाड़ी भेंट की थी अतः यह धरणीवराह धारावर्ष परमार इस घटना के बाद का है।

दिवाकरस्येव करैः कठोरैः करालिता भूपकदम्बकस्य ।
अशिश्रियंतापहृतोरुतापं यमुन्नतं पादपवज्जनौघा ।।१४।।

जिस प्रकार सूर्य की कठोर किरणों से सन्तप्त हुए लोग ताप के निवारण हेतु उन्नत वृक्ष का आश्रय लेते हैं वैसे ही राजसमुदाय से सन्तप्त जनता धवलराजा की शरण में आती है ।।१४।।

धनुर्द्धरशिरोमणेरमलधर्म्ममभ्यस्यतो,
जगाम जलधेर्गुणोर्गुरुरमुष्य पारं परम् ।
समीयुरपि संमुखाः सुमुखमार्ग्गणानां गणाः,
सतां चरितमद्भुतं सकलमेव लोकोत्तरम् ।।१५।।

निर्मल धर्म का अभ्यास करने वाले उस धनुर्धर शिरोमणि राजा धवल के गुण, समुद्र के भी पार चले गये अर्थात् बहुत दूर-दूर तक फैल गये और उनके सम्मुख याचक उनके पास आने लगे । संस्कृत में गुण का अर्थ डोरी भी होता है । धनुर्धारी बाण फेंकने के लिए डोरी अपने कान के समीप खींचते हैं तो मार्गण (बाण) दूर जाता है पर धवल राजा के गुण दूर जाते हैं एवं उनके मार्गण (याचक) समीप आते हैं । सज्जनों का सम्पूर्ण चरित्र ही अद्भुत एवं लोकोत्तर होता है ।।१५।।

यात्रासु यस्य वियदोर्ण्णविषुर्विशेषात्,
वल्गत्तुरंगखुरखातमहीरजांसि ।
तेजोभिरूर्ज्जितमनेन विनिर्ज्जितत्वात्,
भास्वान् विलज्जित इवातितरां (विजय) तिरोभूत् ।१६।

जब यह धवल राजा विजययात्राओं के लिए प्रस्थान करता है तो चलते हुए घोड़ों के खुरों से खुदी पृथ्वी की धूल उड़कर आकाश को इस प्रकार आच्छादित कर देती है मानो इस राजा के पराक्रम और तेज से पराजित सूर्य भी लज्जित हो गया है ।।१६।।

न कामनां मनो धीमान् ध. . .लनां दधौ ।

अपूर्ण पंक्ति को इस प्रकार पूरा किया जा सकता है—

न कामनां तनौ धीमान् ध(वल...ल)लनां दधौ ।
अनन्योद्धार्यसत्कार्यभारधुर्योऽर्थतोऽपि यः ।।१७।।

वास्तव में, यह धवल राजा एक अनन्य उद्धारक एवं सत्कार्य के भार को वहन करने वाला है । स्त्रियों के विषय में यह किसी प्रकार की कामना नहीं रखता है अर्थात् सदाचारी एवं शीलव्रती है ।।१७।।

यस्तेजोभिरहस्करः करुणया शौद्धोदनि शुद्धया,
भीष्मो वचनवंचितेन वचसा धर्म्मेण धर्मात्मजः ।
प्राणेन प्रलयानिलो बलभिदो मंत्रेण मंत्री परो,
रूपेण प्रमदाप्रियेण मदनो दानेन कर्णोऽभवत् ।।१८।।

जो तेज में साक्षात् सूर्य है, विशुद्ध करुणा में साक्षात् बुद्ध है, भीष्म के समान दृढ़प्रतिज्ञ है, धर्म से धर्मराज युधिष्ठिर है, बल में प्रलयकाल की वायु के समान है, मंत्र में इन्द्र के दूसरे मंत्री के समान है, रूप से स्त्रीजनप्रिय कामदेव है एवं दान देने में कर्ण के ही समान है ।।१८।।

सुनयतनयं राज्ये बालप्रसादमतिष्ठिपत्,
परिणतवया निःसंगो यो बभूव सुधीः स्वयं ।
कृतयुगकृतं कृत्वा कृत्यं कृतात्मचमत्कृती-
रकृतसुकृती नो कालुष्यं करोति कलिः सतां ।।१६।।

विद्वान् धवल राजा ने वृद्ध होने पर निस्संग होकर अपने नीतिनिपुण पुत्र युवराज बालाप्रसाद को राज्य सौंप दिया । पुण्यशाली इस राजा ने अपने चमत्कारपूर्ण कर्त्तव्य का पालन कर सतयुग का आदर्श उपस्थित किया । कलियुग सत्पुरुषों के मन में कालिमा उत्पन्न नहीं कर सकता । अर्थात् इस राजा ने अपने आप राज्य छोड़ दिया, ऐसा इस कलियुग में नहीं होता है ।।१६।।

काले कलावपि किलामलमेतदीयम्,
लोकां विलोक्य कलनातिगतं गुणौघम् ।
पार्थादिपार्थिव गुणान् गणयन्तु सत्या,
नैकं व्यधाद् गुणनिधिं यमितीव वेधाः ।।२०।।

ब्रह्मा ने गुण के भंडार इस एकमात्र राजा को इसलिए बनाया है कि लोग कलियुग में भी इसके गणनातीत गुणों के समूह को देखकर पृथु आदि राजाओं के गुणों की गणना कर सकें ।।२०।।

गोचरयन्ति न वाचो यच्चरितं चन्द्रचन्द्रिकारुचिरं ।
वाचस्पतेर्वचस्वी को वान्यो वर्णयेत्पूर्णम् ।।२१।।

उस धवल राजा के चरित्र का सरस्वती भी वर्णन नहीं कर सकती। उसके चरित्र का पूर्ण वर्णन बृहस्पति के अतिरिक्त दूसरा कौन विद्वान् कर सकता है ?।।२१।।

राजधानी भुवो भर्तुस्तस्यास्ते हस्तिकुण्डिका ।
अलका धनदस्येव धनाढ्यजनसेविता ।।२२।।

पृथ्वीपति धवल की राजधानी हस्तिकुण्डिका है। धनिकों से पूर्ण यह नगरी कुबेर की अलकानगरी के समान है ।।२२।।

नीहारहारहरहास हिमांशुहारि,
झात्कारवारिभुविराजविनिर्झराणां।
वास्तव्यजनचित्तसमं समन्तात्,
संतापसंपदपहारपरं परेषाम् ।।२३।।

इस नगरी में राजाओं द्वारा निर्मित झरनों से झर-झर करता पानी बह रहा है। उन झरनों से उठी हुई ओसमाला शिवजी के धवल हास एवं चन्द्रमा की शुभ्रता को भी मात करती है। ये झरने इस नगरी के भव्यजनों के चित्त के समान निर्मल हैं एवं चारों दिशाओं से शत्रुओं के सन्ताप व सम्पत्ति का हरण कर लेते हैं ।।२३।।

धौतकलधौतकलशाभिरामरामास्तना इव न यस्यां।
संत्यपरेऽप्यहाराः सदा सदाचारजनतायाम् ।।२४।।

सदाचारियों से पूर्ण इस नगरी में सुन्दर कामिनियों के स्तनों के समान मन्दिरों के निर्मल सोने के कलशों के अतिरिक्त और कोई वस्तु चित्त को हरण करने वाली नहीं थी ।।२४।।

समदमदना लीलालापाः प [राग...ध] नाकुलाः,
कुवलयदृशां संदृश्यन्ते दृशस्तरलाः परम् ।
मलिनितमुखा यत्रोद्वृत्ताः परं कठिनाः कुचाः,
निविडरचना नीवौ बंधाः परं कुटिलाः कचाः ।।२५।।

इस नगरी को कामिनियों का शृङ्गार मदमाता है । कमल सदृश उनके नेत्र अत्यन्त चञ्चल हैं । ऊंचे उठे हुए काले मुख वाले स्तन बड़े कठोर हैं, उनके अधोवस्त्र की रचना दुरूह है एवं केश घुंघराले हैं । (स्त्रियां किसी भी नगर की समृद्धि की परिचायक होती हैं । शृङ्गार कब होता है ? सुख के समय) ।।२५।।

गाढोत्तुंगानि सार्द्धं शुचिकुचकलशैः कामिनीनां मनोज्ञै-
र्विस्तीर्णानि प्रकामं सह घनजघनैर्देवतामन्दिराणि ।
भ्राजन्तेऽदभ्रशुभ्राण्यतिशयसुभगं नैत्रपात्रैः पवित्रैः,
सत्रं चित्राणि हि धात्रीजनहृतहृदयौर्विभ्रमैर्यत्र तत्रम् २६

इस नगरी में यत्र-तत्र कामिनियों के पवित्र कलश तुल्य सुन्दर कुचों के साथ अत्यन्त उन्नत, [अर्थात् कामिनियों के कुच कलश तथा मन्दिर दोनों यहां उन्नत हैं] उनके (कामिनियों के, घने जघनों के साथ अत्यन्त विस्तीर्ण, पवित्र नेत्र-

पत्रों के साथ अदभ्र—स्वच्छ; धात्रीजनों के द्वारा हरे हुए हृदय वाले विलासों के साथ चित्र युक्त (आश्चर्ययुक्त तथा चित्रयुक्त) देव मन्दिर अत्यन्त सुन्दर शोभायमान हैं ।।२६।।

मधुरा घनपर्वाणो हृद्यरूपा रसाधिकाः ।
यत्रेक्षुवाटा लोकेभ्यो नालिकत्वाद् भिदेलिमाः ।।२७।।

इस नगरी में कठिन गाँठ वाले मनोहर रसपूर्ण एवं मीठे गन्ने की खूब बाड़ियाँ हैं । प्रचुरता के कारण लोगों को इन्हें तोड़ने की छूट है ।।२७।।

अस्यां सूरिः सुराणां गुरुरिव गुरुभिर्गौरवार्हो गुणौघै,
र्भूपालानां त्रिलोकीवलयविलसितानंतरानंतकीर्तिः ।
नाम्ना श्रीशान्तिभद्रोऽभवदभिभवितुं भासमाना समाना,
कामं कामं समर्था जनितजनमनः संमदा यस्य मूर्तिः ।२८।

इस नगरी में महान् गुणसमूह से राजाओं के द्वारा पूजनीय, देवताओं के गुरु बृहस्पति के समान त्रिलोक में अनन्त यश वाले शान्तिभद्र[1] नाम के गुरु हुए । जनमन को प्रफुल्लित करने वाला उनका तेजस्वी शरीर कामदेव को भी लज्जित करने वाला था ।।२८।।

---

1. यहाँ शालिभद्रसूरि नाम भी हो सकता है क्योंकि बलिभद्ररास में वासुदेवसूरि के गुरु शालिभद्रसूरि बताए गए हैं—

अम्ह गुरु सालिसूरि मरुदेसि रहई छई पल्लिनगरि निवेसी ।

—बलिभद्ररास, ९८वीं चौपाई

मन्येऽमुना मुनीन्द्रेण मनोभूरूपनिर्जितः ।
स्वप्नेऽपि न स्वरूपेण समगंस्तातिलज्जितः ।।२९।।

मेरी ऐसी मान्यता है कि इन मुनिराज के द्वारा रूप से पराजित कामदेव स्वरूप में आना नहीं चाहता (कामदेव को शिवजी ने जला दिया था। अतः वह अशरीरी है। यहां यह माना गया है कि सूरिजी की सुन्दरता से पराजित हो कर वह शरीर प्राप्त करना नहीं चाहता) ।।२९।।

प्रोद्यत्पद्माकरस्य प्रकटितविकटाशेषहा[भा]वस्य सूरेः,
सूर्यस्येवामृतांशु स्फुरितशुभरुचिं वासुदेवाभिधस्य ।
अध्यासीनं पदव्यां यममलविलसज्ज्ञानमालोक्य लोको,
लोकालोकावलोकं सकलमचकलत्केवलं संभवीति ।।३०।।

विकसित सूर्य तथा संसार के गूढ़ ज्ञान को प्रकट करने वाले उन सूरि की पाट पदवी पर सूर्य के समान अमृतमय प्रकाश वाले, शुभ रुचि को विकसित करने वाले वासुदेवसूरि नाम के आचार्य आसीन हुए जिनके निर्मल ज्ञान को देखकर सम्पूर्ण संसार ने उन्हें सम्पूर्ण ज्ञान को जानने वाला केवलज्ञानी ही माना[1] ।।३०।।

धर्माभ्यासरतस्यास्य संगतो गुणसंग्रहः ।
अभग्नमार्गणेच्छस्य चित्रं निर्वाणवांच्छता ।।३१।।

---

1. ये वासुदेवसूरि बलिभद्रसूरि ही थे—
बलिभद्रमुनि नूं सारिउ काम दीधुं वासुदेवसूरिनाम ।
हस्तिकुण्डी एहवउ अभिधान थापिउ गच्छपति प्रगट प्रधान ।।
बलिभद्ररास १२० चौपाई

अचूक निशाने की इच्छा वाले भील आदि की मोक्षाभिलाषा आश्चर्यमयी होती है पर सूरिजी अपने मार्ग पर अविचल भाव से रह कर निर्वाण की इच्छा करते हैं। अतः धर्माभ्यासी उन महात्मा का गुणानुराग उचित ही है ।।३१।।

कमपि सर्वगुणानुगतं जनं विधिरियं विदधाति न दुर्विधः ।
इति कलंक निराकृतये कृती यमकृतेव कृताखिलसद्गुणं ३२

दुर्भाग्यशाली ब्रह्मा ने आज तक किसी भी सर्वगुणसम्पन्न पुरुष को उत्पन्न नहीं किया है। अतः इस कलंक को मिटाने के लिए उत्तमगुणधारी इन सूरिजी का निर्माण किया ।।३२।।

तदीयवचनान्निजं धनकलत्रपुत्रादिकं,
विलोक्य सकलं चलं दलमिवानिलांदोलितम् ।
गरिष्ठगुणगोष्ठ्यदः समुददीधरद्धीरधी,
रुदारमतिसुंदरं प्रथमतीर्थकृन्मंदिरम् ।।३३।।

उन वासुदेवसूरि के उपदेश से अपने धन, स्त्री एवं पुत्रपौत्र सबको हवा से हिलते हुए पत्तों की तरह चञ्चल क्षणभंगुर जानकर उस गुणवान् एवं बुद्धिमान् राजा ने विशाल एवं सुन्दर ऋषभदेव भगवान के मन्दिर का उद्धार किया ।।३३।।

रक्तं वा रम्यरामाणां मणितारावराजितं ।
इदं मुखमिवाभाति भासमानवरालकम् ।।३४।।

यह मन्दिर मणियों से दीप्त एवं घुंघराले केशों से युक्त सुन्दर स्त्रियों के मुखमण्डल की तरह मनोहर प्रतिभासित होता है ।।३४।।

चतुरस्र [पट्टज]नघा[ड्ड] निकं,
शुभशुक्तिकरोटकयुक्तमिदम् ।
बहुभाजनराजि जिनायतनं,
प्रविराजति भोजनधामसमम् ।।३५।।

यह श्लोक इस प्रकार हो सकता है—

[1]चतुरस्रमण्डपमधारनिकं,
शुभशुक्तिकरोटकयुक्तमिदम् ।
बहुभाजनराजि जिनायतनं,
प्रविराजति भोजनधामसमम् ।।३५।।

चतुरस्र (समचौरस-वर्गाकार) मण्डप वाला, प्राकार (दीवार) से रहित (अर्थात् खम्भों वाला) मांगलिक सीपियों के पात्रों से युक्त, बहुत से पात्रों से समृद्ध यह जिनमन्दिर भोजनशाला के समान शोभित होता है ।।३५।।

विदग्धनृपकारिते जिनगृहेऽतिजीर्णे पुनः,
समं कृतसमुद्धृताविह भवांबुधिरात्मनः ।
अतिष्ठिपत् सोऽप्यथ प्रथमतीर्थनाथाकृतिं,
स्वकीर्तिमिव मूर्ततामुपगतां सितांशुद्युतिम् ।।३६।।

विदग्धराजा द्वारा बनवाए गए जिनमन्दिर के अति जीर्ण होने पर संसार-समुद्र से अपनी आत्मा का उद्धार करने के

---

1. भरत के नाट्यशास्त्र में चतुरस्र रङ्गमण्डप का वर्णन है । यह मण्डप ३२-३२ क्यूबिट्स का होता है एवं खम्भों पर आधारित होता है ।

लिए उसने (धवल राजा ने) साक्षात् अपनी धवलकीर्ति के समान चन्द्र सदृश कान्तिवाली प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की प्रतिमा स्थापित की ।।३६।।

शान्त्याचार्यैस्त्रिपंचाशे सहस्रे शारदामियं ।
माघशुक्लत्रयोदश्यां सुप्रतिष्ठैः प्रतिष्ठिता ।।३७।।

इस मन्दिर में ऋषभदेव भगवान की मूर्ति की प्रतिष्ठा सुप्रसिद्ध शान्त्याचार्य[1] ने विक्रमी संवत् १०५३ की माघ शुक्ला १३ के दिन की ।।३७।।

विदग्धनृपतिः पुरा यदतुलं तुलादेर्ददौ,
सुदानमवदानधीरिदमपीपलन्नाद्भुतं ।
यतो धवलभूपतिर्जिनपतेः स्वयं सात्म (जो)–,
रघट्टमथ पिप्पलोपदकूपकं प्रादिशत् ।।३८।।

यहाँ तीसरी पंक्ति में "स्वयं सात्मजो" के स्थान पर "स्वयमात्मनोऽ" होना चाहिए। चौथी पंक्ति में 'पिप्पलोपद-कूपकं' के स्थान पर पिप्लोपदनामकं होना चाहिए क्योंकि अरघट्टं एवं कूपकं दो शब्द एक ही अर्थ में हैं ।

---

1. ये प्रसिद्ध शान्तिसूरि थारापद्रगच्छ के होने चाहिये । इन्होंने भीनमाल के ७०० श्रीमाली कुटुम्बों को जैन बनाया था। भोजराज ने इन्हें 'वादिवेताल' का विरुद दिया था । इन्होंने उत्तराध्ययन-सूत्र पर टीका लिखी । धर्मशास्त्र के रचयिता भी ये ही शान्तिसूरि *लगते हैं । इनका स्वर्गवास १०९६ विक्रमी में हुआ ।*

विदग्धराज ने पुराने जमाने में जो तुलादि प्रभूत दान दिया, उस परम्परा का निर्मल बुद्धि धवल ने जो पालन किया वह अद्‌भुत नहीं है क्योंकि धवल ने तो स्वयं अपने पिप्पल नाम के कुए को जिनमन्दिर के लिए अर्पित किया है ।।३८।।

यावच्छेषशिरस्थमेकरजतस्थूणास्थिताम्युल्लस—
त्पातालातुलमंडपामलतुलामालंबते भूतलम् ।
तावत्तारखाभिरामरमणी गंधर्वधीरध्वनि—
र्धामन्यत्र धिनोतु धार्मिकधियः सद्धूपवेला विधौ।३९।

जब तक चांदी के एक खम्भे पर आधारित अतुल मण्डप वाले पाताल की समता शेषनाग के सिर पर स्थित पृथ्वी करती रहेगी तब तक इस मन्दिर में आरती के समय तार स्वर से गाती हुई सुन्दर रमणियों की सङ्गीत धीर ध्वनि को धर्मबुद्धि सुनते रहें ।.३९।।

सालंकारा समधिकरसां साधुसंधानबंधा,
श्लाघ्यश्लेषा ललितविलसत्साद्धिताख्यातनामा ।
सद्‌वृत्ताढ्या रुचिरविरतिर्धुर्यमाधुर्यवर्या,
सूर्याचार्य व्यरचि रमणीवाति रम्या प्रशस्तिः ।।४०।।

सूर्याचार्य द्वारा रचित यह प्रशस्ति रमणी के समान ही रमणीय है । जिस प्रकार रमणी आभूषणों से युक्त होती है वैसे ही यह प्रशस्ति भी उपमादि अलंकारों युक्त है । रमणी यदि सरस है तो यह भी शृङ्गारवीररसादि से युक्त है । रमणी यदि रमणीय आलिङ्गनवाली है तो इसमें भी प्रशंसनीय श्लेषादि अलङ्कार हैं । वह यदि मधुरभाषिणी है तो यह प्रशस्ति भी लालित्यपूर्ण शब्दों से शोभित है । रमणी यदि

चरित्रवान् है तो इस प्रशस्ति में भी उत्तम पुरुषों के चरित्र हैं। रमणी एवं यह प्रशस्ति दोनों ही विरति एवं मधुरता से भरी हुई हैं ।।४०।।

संवत् १०५३ माघ शुक्ल १३ रविदिने पुष्यनक्षत्रे श्रीऋषभदेवनाथदेवस्य प्रतिष्ठा कृता महाध्वजश्चारोपितः ।।मूलनायकः।। नाहर्कजिदजसशप पूरभद्रनगपोचिस्थ श्रावक गोष्ठिकैरशेषकर्म्मक्षयार्थं स्वसंतानभवाब्धितरणार्थं च न्यायोपार्जितवित्तेन कारितः ।।

संवत् १०५३ विक्रमी को माघ सुदी १३ रविवार पुष्य-नक्षत्र में श्री ऋषभदेव की प्रतिष्ठा की गई एवं महाध्वज का आरोपण किया गया ।। मूलनायक ।। नाहक, जिद, जस, शंप, पूरभद्र व नगपोची आदि श्रावकों ने अपने अशेष कर्मों का क्षय करने के लिए एवं अपनी संतान को संसार सागर से पार उतारने के लिए न्याय से उपार्जित धन से यह प्रतिष्ठा करवाई।

टिप्पणी–इस शिलालेख में प्रतिष्ठा करवाने के अर्थ में "कारितः" शब्द का प्रयोग किया गया है। श्लोक सं. ३६ में भी "विदग्धनृपकारिते" शब्द का प्रयोग किया गया है इसका अर्थ है विदग्धराजा के द्वारा प्रतिष्ठा करवाई गई जैसे देवाः प्रियः यस्य स देवप्रियः, स चासौ ब्राह्मणश्चेति देवब्राह्मणः अर्थात् देवता जिसको प्यारे हैं ऐसा ब्राह्मण, देव--प्रिय ब्राह्मण पर संस्कृत में शाकपार्थिवादि समास में उत्तर पद का लोप हो जाता है। "विदग्धनृपकारिते" का समस्त पद खोलने पर होगा विदग्धनृप-प्रतिष्ठाकारिते विदग्धनृपकारिते। इससे यह सिद्ध होता है कि विदग्ध ने भी इस मन्दिर की प्रतिष्ठा ही करवाई थी न कि इसका नवनिर्माण किया था। इस प्रशस्ति को सूर्याचार्य ने बनाया है। 卐

शिलालेख सं 319

वि. सं. ९७३ व ९९६

✲

परवादिदर्पमथनं हेतुनयसहस्रभंगकाकीर्णं ।
भव्यजनदुरितशमनं जिनेन्द्रवरशासनं जयति ।।१।।

अन्य वादियों (तार्किकों) के दर्प को मथ कर नवनीत रूप एक निश्चय को पहुंचाने वाले हजारों हेतुओं एवं नयों के भङ्गों से युक्त, भव्य जनों के पाप का शमन करने वाले जिनेन्द्र भगवान के शासन (धर्म) की जय हो ।।१।।

आसीद्धीधनसंमतः शुभगुणो भास्वत्प्रतापोज्ज्वलो,
विस्पष्टप्रतिभः प्रभावकलितो भूपोत्तमांगार्चितः ।
योषित्पीनपयोधरांतरसुखाभिष्वंगसंलालितो,
यः श्रीमान्हरिवर्म्म उत्तममणिः सद्वंशहारे गुरौ।।२।।

श्रेष्ठ वंश रूपी हार में श्रेष्ठ मणि के समान, बुद्धिमानों में मान्य, शुभगुणों से युक्त, प्रतापाग्नि से प्रकाशमान, प्रतिभाशाली, प्रभावयुक्त, राजाओं के मस्तकों से पूजित एवं रमणियों के पीन पयोधरों के बीच आलिगनों से परिपालित श्रीमान् हरिवर्मा नाम के राजा हुए ।।२।।

तस्माद्बभूव भुवि भूरिगुणोपपेतो,
भूप- प्रभूतमुकुटाचित–पादपीठः ।
श्रीराष्ट्रकूटकुलकाननकल्पवृक्षः,
श्रीमान्विदग्धनृपतिः प्रकटप्रतापः ।।३।।

उन हरिवर्मा के—महान् गुणों से सम्पन्न, राजाओं के मुकुटों से पूजित-चरण, राठौड़ वंश रूपी उपवन में कल्पवृक्ष के समान प्रतापी श्रीमान् विदग्धराज हुए ।।३।।

तस्माद्भूपगणा· · · · ·तमा कीर्तेः परं भाजनं,
संभूतः सुतनुः सुतोतिमतिमान् श्रीमम्मटो विश्रुतः ।
येनास्मिन्निजराजवंशगगने चन्द्रायितं चारुणा,
तेनेदं पितृशासनं समधिकं कृत्वा पुनः पाल्यते ।।४।।

उस विदग्ध राजा के राजाओं से वन्दित कीर्ति का परम पात्र मम्मट नाम का एक बुद्धिमान पुत्र उत्पन्न हुआ । ये मम्मट इस राठौड़ वंश के आकाश में चन्द्रमा के सदृश है । इन्होंने ही पिता की इस आज्ञा को और बढ़ाकर उसका पुनः पालन किया ।।४।।

श्री बलभद्राचार्यं विदग्धनृपपूजितं समभ्यर्च्य ।
आ चन्द्रार्कं यावद्दत्तं भवते मया· · · · · ।।५।।

विदग्धराज से पूजित श्री बलभद्राचार्य (वासुदेवसूरि) की अर्चना कर मैं (मम्मट) सूर्यचन्द्रस्थिति तक यह राजाज्ञा प्रदान करता हूँ ।।५।।

श्री हस्तिकुंडिकायां चैत्यगृहं जनमनोहरं भक्त्या ।
श्रीमद्बलभद्रगुरोर्यद्विहितं श्री विदग्धेन ।।६।।

श्री हस्तिकुण्डी नगरी में श्रीबलभद्र गुरु के लिए विदग्धराज ने जो जन-मनोहर जिन-मन्दिर भक्ति से बनाया है ।।६।।

तस्मिंल्लोकान्समाहूय नानादेशसमागतान् ।
आचन्द्रार्कस्थितिं यावच्छासनं दत्तमक्षयम् ।।७।।

उस मन्दिर में नाना देशों से आए हुए जन-समुदाय को आमन्त्रित कर उनकी साक्षी में चन्द्र-सूर्य की स्थिति तक यह अविचल राजाज्ञा प्रदान करता हूँ ।।७।।

रूपक एको देयो वहतामिह विंशतेः प्रवहणानां ।
धर्म्म [र्थ.....]क्रयविक्रये च तथा ।।८।।

बीस पोठों के क्रय-विक्रय तथा आयात-निर्यात पर धर्मार्थ नित्य एक रुपया देय होगा ।।८।।

संभृतगंत्र्या देयस्तथा वहंत्याश्च रूपकः श्रेष्ठः ।
घाणे घटे च कर्षो देयः सर्व्वेण परिपाट्या ।।९।।

भरी हुई गाड़ी के यहाँ से गुजरने पर एक रुपया देना होगा । प्रत्येक घाणी तथा अरहट पर एक कर्ष[1] सबको रीति के अनुसार देना होगा ।।९।।

---

1. कर्ष—एक प्रकार की मुद्रा ।

श्री [भट्ट] लोकदत्ता पत्राणां चोल्लिका त्रयोदशिका ।
पेल्लक पेल्लकमेतद्द्यू तकरै शासने देयम् ।।१०।।

पान-विक्रेताओं को तथा जुआरियों को प्रत्येक अड्डे के लिये १३ चोल्लिका[1], मन्दिर के लिये शासन को देना होगा ।।१०।।

देयं पलाशपटकमर्यादा वर्तिक· · · ।
प्रत्यरघट्टं धान्याढकं तु गोधूमयवपूर्णं ।।११।।

प्रत्येक अरहट से गेहूँ एवं जौ से भरा हुआ आढक[2] । पहली पंक्ति अस्पष्ट है ।।११।।

पेड्डा च पंचपलिका धर्मस्यविशोपकस्तथा[3] भारे[4] ।
शासनमेतत्पूर्वः विदग्धराजेन संदत्तम् ।।१२।।

भैंस पर पांच पालिकाएँ व प्रत्येक भार पर कौड़ी का बीसवाँ भाग मन्दिर का होगा । यह आज्ञा पहले विदग्धराज ने दी है ।।१२।।

कर्पासकासं स्वकुंकुम पुर मांजिष्ठादिसर्वभाण्डस्य ।
दश दश पलानि भाराः देयानि ।।१३।।

---

1. चोल्लिका भी कोई सिक्का होना चाहिए ।
2. चार सेर का एक नाप ।
   पेड्डा–भैंस, दरवाजा, भीत । पालिका–एक सिक्का ।
3. विशोपक–कौड़ी का बीसवां भाग ।
4. भार एक नाप ।

कपास, गुग्गुल, कुंकुम, मजीठ आदि वस्तुओं के प्रत्येक भार के लिये दस-दस पल राज्य को देनी चाहिये ।।१३।।

आदानादेतस्माद्भागद्वयमर्हतः कृतं गुरुणा ।
शेषस्तृतीयभागो विद्याधनमात्मनो विहितः ।।१४।।

इस आय के दो भाग मेरे गुरु ने मन्दिर के लिये निश्चित किये हैं तथा शेष तीसरा भाग (गुरु ने स्वयं के) विद्याधन के लिए रखा है ।।१४।।

राज्ञा तत्पुत्रपौत्रैश्च गोष्ठ्या पुरजनेन च ।
गुरुदेवधनं रक्ष्यं नोपेक्ष्यं हितमीप्सुभिः ।।१५।।

राजा को, उसके पुत्रों तथा पौत्रों और समिति तथा नगरनिवासियों को गुरु एवं देव के धन की रक्षा करनी चाहिये। स्वहितार्थी को उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ।।१५।।

दत्ते दाने फलं, दानात्पालिते फलम् ।
भक्षितोपेक्षिते पापं गुरुदेवधनेऽधिकम् ।।१६।।

दान देने में फल है, दान से भी अधिक उसके पालन में फल है। गुरु तथा देवता के धन को खाने तथा उसकी उपेक्षा करने में अधिक पाप है ।।१६।।

गोधूममुद्गयवलवणरालकादेस्तु मेयजातस्य ।
द्रोणं प्रति माणकमेकमत्र सर्वेण दातव्यम् ।।१७।।

गेहूँ, मूँग, जौ, नमक एवं राल[1] आदि धान्य विशेष को तोलते हुए प्रत्येक द्रोण[2] पर एक माणा[3] सभी को देना चाहिये ।।१७।।

बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सग रादिभिः ।
यस्य यस्य यदाभूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ।।१८।।

इस पृथ्वी को सगर आदि बहुत से राजाओं ने भोगा है । यह भूमि जब जिसकी होती है, तब वह राजा उसका फल भोगता है । अर्थात् जो राज करेगा वह इस राजाज्ञा का पालन करवायेगा तथा इस धन का सदुपयोग करवाएगा।।१८।।

रामगिरिनंदकलिते विक्रमकालेगते तु शुचिमासे ।
श्रीमद्बलभद्रगुरोर्विदग्धराजेन दत्तमिदम् ।।१९।।

९७३ विक्रमी वर्ष के बीतने पर आषाढ़ मास में विदग्ध ने श्रीमान् बलभद्राचार्य के लिए यह दानपत्र दिया था ।।१९।।

नवसु शतेषु गतेषु तु षण्णवतीसमधिकेषु माघस्य ।
कृष्णैकादश्यामिह समर्थितं मम्मटनृपेण ।।२०।।

९९६ की माघ वदी एकादशी को मम्मट राजा ने इस राजाज्ञा का समर्थन किया ।।२०।।

---

1. राल–एक प्रकार का धान्य विशेष ।
2. द्रोण–एक नाप ।
3. माणक–एक नाप जो पाँच सेर का होता है ।

यावद्भूधरभूमिभानुभरतं भागीरथी भारती,
भास्वद्भानि भुजंगराजभवनं भ्राजद्भवांभोधयः ।
तिष्ठन्त्यत्र सुरासुरेन्द्रमहितं जैनं च सच्छासनं,
श्रीमत्केशवसूरिसंततिकृते तावत्प्रभूयादिदम् ।।२१।।

जब तक पृथ्वी, पर्वत, सूर्य भरतखंड, गङ्गा, सरस्वती, प्रकाशमान तारे, शेषनाग का स्थान, क्षीरसागर और संसार-सागर है तब तक देवेन्द्रों-असुरेन्द्रों से पूजित यह जैनशासन श्रीमान् केशवसूरिजी[1] की परम्परा के लिए कायम रहे ।।२१।।

इदं चाक्षयधर्मसाधनशासनं,
श्रीविदग्धराजेन दत्तं, संवत् ९७३ श्रीमम्मटराजेन
समर्थित संवत् ९९६ । सूत्रधारोद्भव शत—
योगेश्वरेण उत्कीर्णेयं प्रशस्तिरिति ।

यह अक्षय धर्म साधन रूप आज्ञा श्रीविदग्धराज ने संवत् ९७३ वि. में दी एवं श्री मम्मटराज ने ९९६ विक्रमी में इसका समर्थन किया । शतयोगेश्वर सोमपुरा ने इसे पत्थर पर खोदा ।

---

1. ये केशवसूरि वासुदेवाचार्य ही हैं । गोड़वाड़ में विशेषकर नाड़लाई में जसिया, केसिया के सम्बन्ध में कितनी ही दन्त-कथाएँ चलती हैं । ये दन्तकथाएँ व चमत्कार वासुदेवसूरि के चरित्र से मेल खाती हैं । जसिया से यशोभद्रसूरि व केसिया से केशवसूरि या वासुदेवसूरि का ही ग्रहण होता है । इनकी यशोभद्रसूरि के साथ स्पर्धा हो गई थी । ये ही केशवसूरि अथवा वासुदेवसूरि हस्तिकुण्डी गच्छ के उत्पादक थे ।
ऐतिहासिक रास संग्रह भाग द्वितीय पृष्ठ ६३ ।

टिप्पणी—यह शिलालेख मम्मटराज के समय राजाज्ञा के रूप में था, जो या तो भोजपत्र अथवा ताम्रपत्र पर रहा होगा पर वास्तव में इस शिलालेख को खुदवाया मम्मट के पुत्र धवल ने ही और खोदने वाला भी एकमात्र शतयोगेश्वर सोमपुरा था।

शिलालेख ३१९ (वि. सं. १३३५)[1]

ओं संवत् १३३५ वर्षे श्रावण वदि १ सोमेऽद्येह समीपाट्टी[2] मांडपिकायां भांया हटउ भावा पयरा मह[3] सजनउ महं धीणा ठ० धणसीहउ ठ० देवसीह प्रभृति पंचकुलेन श्री रातामिधान श्री महावीर देवस्य नेचा प्रचय वर्ष स्थितिके कृत द्र २४ चतुर्विंशतिद्रम्मा वर्षं वर्षं प्रति समीमंडपिका पंच-कुलेन दात्तव्याः पालनीयाश्च ।।

ॐ संवत् १३३५ वि. के श्रावण वद १ सोमवार के दिन सेवाड़ी मंडप के भाया, हटा, भावा, पयरा वयोवृद्ध सज्जनजी, धीणाजो, ठा० धनसिंहजी, ठा० देवीसिंह आदि पंचों ने राता महावीरजी के मन्दिर में ध्वजा चढ़ाई व २४ द्रम प्रति वर्ष ये लोग देंगे व परम्परा का पालन करेंगे।

बहुभिर्वसुधा .....तस्य तदा फलम् ।

यह ९९६ के शिलालेख का १८वां श्लोक है।

---

1 ३१९ से ३२२ तक के शिलालेख हस्तिकुण्डी के मन्दिर के खम्भों पर खुदे हुए हैं।

2 समीपाट्टी–सेवाड़ी

3 महं–महत्–बड़े के अर्थ में

वि. सं. १३३६ का शिलालेख

संवत् १३३६ वर्षे श्रेष्ठिको नागश्रेयसे अरसींहेन म (स) टापक्षे दत्त द्र १२ उभय द्र ३६ समीपाटी मंडपिकायां व्यापृयमाण पंचकुलेन वर्ष वर्ष प्रति आचन्द्रार्कं यावद्दात्तव्याः शुभमस्तु ।

संवत् १३३६ में नागसेठ के कल्याण के लिए अरसिंह द्वारा १२ द्रम दी। ३६ द्रम सेवाड़ी मंडप में प्रयोग के लिए पंचों के द्वारा यावत्सूर्यचन्द्र देनी होगी [शुभं भवतु]।

शिलालेख ३२० संवत् १३४५ विक्रमी

ओं. नमो वीतरागाय । संवत् १३४५ वर्षे प्रथम भाद्रवा वदि ६ शुक्रदिनेऽद्येह श्री नडूलमंडले महाराजकुल श्री सांवत सिंह देवराज्येऽत्र नियुक्त श्रीकरणमहं ललनादि पंचकुलप्रभृति अक्षराणि पञ्च (प्रयच्छत्) ? समीतल पदेत्य मंडपिकायां साधु० हेमाकेन हाथितुंडी ग्रामे श्री महावीरदेव नेचार्थं वर्ष प्रति वत्सी (१) क द्र २४ चतुर्विंशति द्रम्मा प्रदत्ता शुभं भवत् ।। कृष्णविजय लिखितम् ।

ॐ नमो वीतरागाय । सवत् १३४५ विक्रमी भाद्रपद वदी ६ शुक्रवार के दिन श्री नाडौल मंडल में महाराज सांवतसिंह[1] के राज्य में यहाँ नियुक्त श्रीकरण, ललना आदि

1. कर्मसिंह के जमाने में १३३६ वि. सम्वत् के मेवाड़ के सिसोदिया रुद्रसिंह व उसके पुत्र लाखा ने बहेड़ा पर आक्रमण किया । उस समय वे बहेड़ा (बेड़ा) के राव थे। बाद में मुसलमानों से युद्ध करते हुए वे मारे गये ।

पंचों तथा सज्जन हेमा ने हथूंडी गाँव में महावीर भगवान की नेचार्थ प्रति वर्ष २४ द्रम का दान किया। बहुभिर्वसुधा..... तस्य तस्य तत्फलम् ।।

पहले अर्थ दिया जा चुका है। कृष्णविजय ने यह प्रशस्ति लिखी।

शिलालेख ३२२ संवत् १३४६

ॐ नमो वीतरागाय। संवत् १३४६ वर्षे श्रावण वदि ३ शुक्र दिन बहेड़ा ग्रामे महाद्याल सा. राव कर्मसिंह (लेख अधूरा है)

शिलालेख ३२१ वि. सं. १२९९

ॐ सं. १२९९ वर्षे चेत सुदी ११ शुक्रे श्री रत्नप्रभोपाध्यायशिष्यैः श्री पूर्णचन्द्रोपाध्यायैरालकद्वयं शिखराणि च कारितानि सर्वाणि।

सं. १२९९ के चेत सुदी ११ शुक्रवार को श्री रत्नप्रभोपाध्याय के शिष्य श्री पूर्णचन्द्र उपाध्याय ने दो आले व सभी शिखर निर्मित करवाये।

तीन नये शिलालेख

[शिलालेख सं. १]

सं. १०११ ज्येष्ठ वदी ५ श्री शान्तिभद्राचार्यैमण्डपोऽयं महिर..... ..... सूत्रधार वामक शुभहस्तेन कारितो सैव दिने श्री यशोभद्राचार्याणां सूरिपद प्रतिष्ठेति ।

संवत् १०११ वि. जेठ वदी ५ श्री शान्तिभद्राचार्य ने यह मण्डप वामक नामक सेलावट के शुभ हाथों से बनवाया इसी दिन श्री यशोभद्राचार्य[1] की सूरिपद पर प्रतिष्ठा हुई थी ।

शिलालेख सं. २

(संवत् १०४८ वैशाख वद ४)

श्री शान्तिभद्राचार्यैर्गोष्ठ्या च मण्डपोऽयं कारितः ।

श्री शान्तिभद्राचार्य ने समिति के द्वारा यह मण्डप बनवाया ।

---

1 श्री यशोभद्रसूरि का स्वर्गवास यशोभद्रसूरिरास के अनुसार संवत् १०२९ में हुआ । सं १८७७ में दीपकविजयजी कृत सोहमकुल-रत्नपट्टावलिरास में यशोभद्रसूरि के विषय में लिखा है:—

सांडेरागच्छ में जसोभद्रसूरिराय/नवसेंहे सत्तावन समे जनम वरस गछराय/संवत नवसै हैं अडसठे सूरिपदवी जोय

अर्थात् उनकी सूरिपद प्रतिष्ठा ९६८ में हुई एवं जन्म ९५७ में । इनका स्वर्गवास १०२९ में हुआ । इनकी सूरिपदवी की जयन्ती निश्चित रूप से १०११ विक्रमी की जेठ वद ५ को ही हुई होगी ।

शिलालेख सं. ३

संवत् ११२२ मगसिर सुदी १३ पासनागशिष्येण[1] सुमण हस्तिना

....

१४० गोष्ठिकानां च... ....

....

शिलालेख अधूरा है।

---

1 पार्श्वनाग ने संवत् १०४२ विक्रमी में 'आत्मानुशासन' की रचना की। ये सुमनहस्ति उनके ही शिष्य मालूम होते हैं।

परिशिष्ट

।। श्री ।।

बीजापुर-प्रशस्ति

[१]

धन्येयं नगरी सुधारसभरी, यत्रास्ति गोदावरी;
नित्यानन्दकरी जिनेश्वरपुरी, किं वा कृपासागरी ।
सच्चारित्रभरी जनोदयकरी, व्यावद्यावल्लरी;
बीजैभूरिभरी जनोदयकरी, तेनास्ति बीजापुरी ।।१।।

लोकालोकविकासकोऽसि भगवन्, पूज्योऽसि तीर्थेशितः;
प्रत्यष्ठापि भवद्भिरेव जगती, दत्तं च ज्ञानाञ्जनम् ।
कुर्वन्नाद्य तथापि ते यतिवरा, यत्र प्रतिष्ठाञ्जने ;
तीर्थात्तीर्थतरं च पावनतमं, धन्यं हि बीजापुरम् ।।२।।

धन्यः सज्जनवल्लभोऽद्य जगतां, जातं हि ते पावनम्;
राजन्त्यद्य जिनालयास्तव गिरा, विद्यालया भूरिशः ।
संख्यातीतजिनेश्वराश्च भवताऽनेके प्रतिष्ठापिताः,
इत्थं धर्मसमुन्नतिं निजगिरा, कृत्वैव संशोभसे ।।३।।

मार्गे शुक्लदले शुभे श्रवणभे, षष्ठ्यां कवेर्वासरे;
श्रीमत्सङ्घचतुर्युते जयजया, रावे च बीजापुरे ।
आचार्येण च वल्लभेन गुरुणा, बाणेन्द्रयुक् साधुना;
नेत्रे सम्भवचंद्रयोश्च विशदं, प्रीत्या त्वयैवाञ्जिते ।।४।।

बीजाग्रामनिवासिनो युवजना, ये वा स्वयंसेवकाः;
वृद्धा ज्ञानवयोऽधिकाश्च शिशवः सर्वेऽपि ये सेवकाः ।
नो शब्दं हि कदापि केऽपि पुरुषा, न प्रोक्तवन्तः परं;
स्वे स्वे कर्मणि प्रोजिताः प्रतिक्षणं, कृत्यं स्वकं कुर्वते ।।५।।

शान्तिस्नात्रविधिर्पदा जिनपतेर्जातः प्रतिष्ठोत्सवः,
प्राहूतो मुनिवल्लभेन बहुधा, श्रीपूलचन्द्रस्तदा ।
प्रीतिं वीक्ष्य विभावयन्ति कवयश्चेमौ पुरा बान्धवौ,
तं भावं वहतोऽधुनापि समये, कैरेव न ज्ञायते ।।६।।

[२]

राजा विदग्धाभिधो जातः प्रकृतेः प्राणवल्लभः ।
हस्तितुण्डीपुराधीशः धार्मिकः परमार्हतः।।१।।

कदाचित्तन्मनस्येवं चिन्ता जाता शुभावहा ।
ममास्ति विभवो भूयान् धर्मे नैव नियोजितः।।२।।

किं तया क्रियते लक्ष्म्या लग्ना धर्मे न वा गुरौ ।
एनां सफलयाम्यद्य कृत्वा मूर्तिं जिनेशितुः।।३।।

इत्थं विचिन्त्य सौवर्णीं मूर्तिमादीश्वरस्य वै ।
सद्भक्त्या कारयामास सदृशीं निजसम्पदा ।।४।:

हस्तितुण्डीपुरीचैत्ये प्रतिष्ठापितवान् मुदा ।
कियत्काले जातो विद्वच्छिरोमणिः ।।५।।

आचार्यः श्री यशोभद्रः भव्यानां प्रतिबोधकः ।
तस्य पट्टधरः श्रीमान् शालिभद्रो बभूव ह ।।६।।

राजपुत्राश्च राठौरास्तेनैव प्रतिबोधिताः ।
विधाय प्रार्हतान् पश्चादोसवाले नियुक्तवान्।।७।।

व्यतीयाय कियान् कालो जीर्णं जातं च मन्दिरम् ।
वैक्रमीयसहस्राब्दे द्वितीयोद्धरणं कृतम् ।।८।।

तत एवं महावीरो वीतरागः प्रतिष्ठितः ।
रक्ताभिधं परं तस्य नाम प्राहुर्मनीषिणः ।।९।।

रसाधिक्ये द्विसाहस्रे बीजापुरनिवासिनः ।
मिथोभूय पुनस्तस्य भव्यमुद्धरणं व्यधुः ।।१०।।

कृत्वावार्षिकमेव साद्रिनगरे सिद्धाचलं यायिनं,
सूरिं श्रीमुनिवल्लभमुनियुतं संप्रार्थ्य सद्भावतः ।
श्रीमद्रक्तजिनेश्वरस्य च पुनश्चैते प्रतिष्ठा कृते,
बीजाग्रामनिवासिनो भविजना आनीनयन्नादरात् ।।११।।

मार्गे शुक्लदले शुभे श्रवणभे षष्ठ्यां कवेर्वासरे,
श्रीमत्संघचतुर्विधेन महता श्री हस्तितुण्डीपुरे ।
आचार्येण च वल्लभेन गुरुणा वाणेन्द्रयुक् साधुना,
बिम्बं रक्तजिनेश्वरस्य शिवदं प्रीत्या प्रतिष्ठापितम् ।।१२।।

भो भो शाह खुशालचन्दतनयाः सद्धर्मधौरेयकाः,
श्रीमन्तश्च जवेरचन्दधनिनः पञ्चापि रत्नोपमाः ।
बीजाग्रामनिवासिनो भविजना अन्येऽपि साधर्मिकाः,
वर्धन्तां धनधान्यपुत्रविभवैर्यैरेव दत्तं धनम् ।।१३।।

इदं रामकिशोरस्य पद्यं नैव च शोभनम् ।
तथापि स्वमनस्तुष्ट्यै दत्तं वल्लभसूरये ।।१४।।

क्षुत्क्षामाय बुभुक्षवेऽल्पकमथो दानेन यादृक् फलं,
प्रोक्तं ज्ञानधनैर्नपूर्ण धनिने त्यागेन किंचित्फलम् ।
तद्वच्चैकजिनालयस्य पततो वां कृता चोद्धृति–
स्तेनानेकनवीकृतस्य शिवदं प्राप्तं फलं सर्वदा ।।१५।।

कर्तुः कारयितुश्च शुभं भूयात् ।।

गोरक्षपुरनिवासिनः
रामकिशोरस्येयं कृतिः

(असल री नकल) ।।श्री।।

महावीरजी रा पटा री श्री परमेश्वरजी सहाय छे

स्वरूप श्री अनेक सकल शुभ ओपमान् ठाकरां राज श्री जोगसिंहजी कंवरजी श्री देवीसिंहजी देव बचनापत राजस्थान गांव बीजापुर जोग दीसे तथा सेठजी श्री माणेकलालजी चुन्नीलालजी वासी अहमदाबाद हाल बम्बई वाला ने पटो १ मौजा बीजापुर खास री सरहद में इण मुजब कर दीनों तथा महावीर स्वामीजी रे मन्दिर कने धर्म-शाला व बगेचो वणावण सारू कर दीनो जीणरे जमीन री वीगत नीचे मुजब है–

मन्दिर श्री महावीर स्वामीजी रे सांमी यांने मुंडा आगे जमीन उगुणी आथुणी वो उतराही दीखणा ही लम्बी चौड़ी बीघा ४ चार धर्मशाला वणावण सारु–

महावीरजी कनली वाव १ जो पकी बंदीयोड़ी है तीको वाव वो इणरे कने जमीन लम्बी चवडी बीघा ३ तीन बगेचो लगावण सारु–

ऊपर मुजिब जमीन वो वाव रो पटो थांने कर दीनो है ने इणरे सुकराणा रो रु. १।) अखरे रु. सवा थांरा कनासु लेय लीनो है अब इण जमीन ऊपर जो थारी इमारत वगेरे वणावसो वो बगेचो वगेरे लगावसो जीणरे जो आमदनी वगेरा होसी जीणरो ठिकाणा सु कोई खेचल नहीं होसी जो जमा खातर राखसी और अठे जो मेलो वगेरा भरीजसी वो जीमण वगेरे होवसी तरे आपरी हदुद रे बारे जो दुकानों वगेरे लागसी जीणरो लगान सदामद मुजब ठिकाणा लेसी और आपरे पटा सुद जमीन में ठिकाणा री तरफ सु कोई खेचल नहीं की जावसी तीणरो उपर मुजब पटो थांने कर दीनो है सो सई है लीखावट रा दा. मुता संवतराज बेटा गणेसराजजीरा जात रा भंसाली ठिकाणा खेतर पाली चांतरा वाला री है श्री ठाकुर सहाब रे हुकम सु लीखने बचा दीयी छे फक्त ता० ७-२-४० ।

Jog Singh
Chief of Bijapur

मन्दिर के क्षेत्र के अतिरिक्त क्षेत्र को राजस्थान सरकार ने ऐतिहासिक महत्त्व का घोषित किया ।

सूचना

राजस्थान सरकार निम्नांकित प्राचीन स्मारक/स्थान/वस्तु को राजकीय महत्त्व का घोषित करने पर विचार कर रही है । इसलिये राजस्थान सरकार, पुरावशेष स्थान तथा प्राचीन वस्तु अधिनियम १९६१ (अधिनियम संख्या १९ सन् १९६१) की धारा ३ की उप-धारा (१) के अन्तर्गत प्रदत्त शक्तियों के आधार पर राजस्थान सरकार इस सूचना द्वारा निम्नांकित स्मारक/स्थान/वस्तु को सुरक्षित घोषित करना चाहती है ।

कोई भी व्यक्ति इस घोषणा की तिथि से दो माह के अन्दर अपनी आपत्तियों को सरकार द्वारा पुनः विचार हेतु प्रस्तुत कर सकता है ।

क्रमांक	स्मारक/स्थान वस्तु का नाम	स्थान	जिला	प्राचीन महत्त्व
१	२	३	४	५
४३	हथुन्दी (बीजापुर) हस्तीकुण्डी	हथुन्दी	पाली	पुरातत्त्व एवम् ऐतिहासिक महत्त्व

डायरेक्टर
आरक्योलोजी एण्ड म्यूजियम्स
राजस्थान, जयपुर

शिलालेख–९९

॥ श्री परमेश्वरजी ॥

सही

प र वा ना

ठाकुरांराज श्री जोगसिंहजी साहब विसनायतु उप्रंच बीजापुर के आमप्रजा की तालाब पर जीव हिंसा नहीं होने देने की अर्ज पर गौर करने से मालूम हुआ कि अर्ज बिल्कुल वाजिब है और बेशक जीवहिंसा करना महापाप है।

इसलिए कोई शख्स तालाब पर किसी प्रकार की जीव-हिंसा न करे और तालाब में कोई गोली वगेरा ना छोड़े क्योंकि यह जगह आपके पानी पीने की भी है। यह हुक्म चन्द्र और सूर्य प्रकाशित रहे तब तक कायम रहे।

इस हुक्म से खिलाफ चलेगा वह अपने धर्म से विमुख होगा। वि. संवत १९७७, कार्तिक शुक्ला १, गुरुवार, तारीख ११ नवम्बर सन् १९२० ई०–

11. 11. 20	Sd/– जोगसिंह
दा. छतरसिंह	बीजापुर
दा. लक्ष्मणसिंह	दा. लाला हरनारायण
दा. सिवरामजी रा बीजापुर	सायर थानेदार

अ्रसल री नकल

मुहर	श्री शंकर सहाय छे

स्वरूप अनेक सकल अोपमा ठाकुरांराज श्री देवीसिंहजी साहब कुंवरजी श्री नरेन्द्रसिंहजी साहब राजस्थान जागीर मोजे बीजापुर प्र/बाली देव वचनायत तथा जवेरचन्दजी चन्दाजी, सा ताराचन्द कुपाजी सा हजारीमल किसनाजी चोबटीया सा संतोकचन्द रतनाजी सा भीमराज किसनाजी कार्यकरन्दा जैन श्वेताम्बर महावीरजो रो मन्दिर वो धर्मशाला जागीरी सीमा बीजापुर री हतुण्डी में हजारों बरसा रो पुराणो बणि-योडो जो जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक रे कब्जे सुद है जीणरो पटो ता. ७-२-४० ने सेठ माणकलाल चुन्नीलाल सा अहमदा-बाद वालांरे नाम बोघा ७ अखरे सात रो है, यो जमीन उणरे सिवाय जमीन बीघा ६।। अखरे साडी छ फेर नई जमीन साधा-रण खाते बगीचो वो धर्मशाला वो मकानात वगेरा वणावणा सारू दी जावे है जुमले बोघा १३।। अखरे साडी तेरह रो पटो सामिल कियो जावे है जो कब्जा मौका पाते पीलर लगवा दिया है जीणरा पाड़ोसी तफसील हस्बजेल है:—

(१) दिशा पूर्व में महादेवजी रो मन्दिर वो पंच तिरथी वाला रे बीच में है।
(२) दिशा उत्तर में नदी री खड है।
(३) दिशा दक्षिण में पहाड़ है।
(४) दिशा पश्चिम में राजपंथ मार्ग जो कुडाल जावे है।

शिलालेख–१०१

ऊपर मुजब जमीन बीघा १३।। अखरे साडी तेरह । वाव श्री मन्दिरजी री पाणी री है कायम छे धर्मशालाओं बणि-योडी वो जमीन बगीचा वो धर्मशाला बगेरा जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ रे काम में आवेला इणारे सिवाय दुजोरो कोई हक वो खेचल नहीं हो सकेला और इमारत बनावणो वो बगीचो बणाववा रो हक होसी और मालकाना हक विगेरे जैन श्वेताम्बर श्री संघ रो होसी । ठीकाणा रो इण पटा सु कोई तालुको नहीं । श्री मन्दिरजी में मूर्ति होवण सु अमुक माफीक इण जमीन रे आस पास में कोई जीवहिंसा नहीं कर सकेला । इण पटा री कीमत रा रुपया ११००) अखरे इग्यारा सौ रोकड़ा लेवेने इमारती पक्को पट्टो कार्य करन्दो ने कर दीयो जावे है वो मने वो मारा वारिसान ने मन्जुर है और अठे जो मेलो वगेरा भरीजसी वो आपरी हदांरे बारे दुकानां वगेरा लागसी वो जीमण होसी जद जीणरी सदा वंद मुजब हमेशा ठीकाणा में रु. ७।। अखरे रु. साडी सात थाँने भरणा पड़सी ने मेला रो बन्दोवस्त राकसी सम्वत २००६ आसोजवदी ७ ने बुधवार ता. १९-९-१९४९ ।

नकसो इण माफिक है

$$\text{क} = \text{९०} \times \frac{\text{३६} + \text{३८}}{\text{२}} = \text{३३३०}$$

$$\text{ख} = \text{६३} \times \frac{\text{१८} + \text{१८}}{\text{२}} = \text{११८६}$$

$$\text{ग} = \text{५८} \times \frac{\text{४} - \text{१८}}{\text{२}} = \text{६६७}$$

$$\text{घ} = \text{७१} \times \frac{\text{५}}{\text{२}} = \text{१६८}$$

$$\text{ङ} = \text{३२} \times \frac{\text{२२}}{\text{२}} = \text{३५२}$$

$$\text{५४०४} : \text{४००} = \text{१३।।}$$

साडी तेरह बीघा री लम्बाई-चौड़ाई में श्री महावीरजी री जमीन रो पट्टो कर दियो जावे है सो खुशी थका भोगवीया जावसी तथा सेठ माणकलाल सो अहमदाबाद वालां रे नाम जो पट्टो वीघा ७ सात रो सिर्फ रु० १। अखरे सवा रे अेवज रु. ७।। अखरे साडी सात रुपिया मेलो महावीरजी रे भरियां रे बाद सालो साल ठिकाणा में भरीया सु जो कर ने दोयो गयो है उणरे माफिक सदामद रुपीया ठिकाणा मे भरीया जावसी मेलारी लागत रा रु. ७।।) साडी सात लागे है सो सदामंद दीया जावेला इणमें गलती करेला तो पोतारा धर्म में विमुख वेला।

No. 383 of Bijapur

ग्रामपंचायत बोर्ड
३–५–५७
बीजापुर

Jog Singh
यह पट्टा तसदीक किया गया
[बाबूलाल रतनचंद]
Devi Singh
सरपंच बीजापुर

BOMBAY PROVINCE 3 Rs.

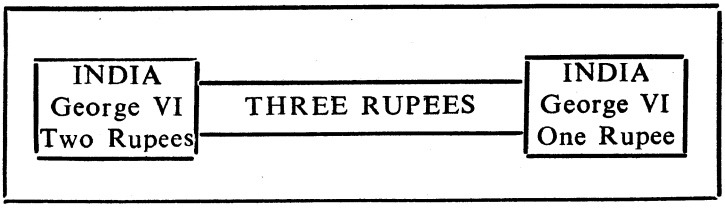

Bullion Exchange Building,
Bombay 22 Dec., 1945
Stamped Paper of Rs. 3
only.

In the matter of two pieces of vacant lands situated at Hathundi within the limits of the village of Bijapur in Jodhpur State.

I, MANEKLAL CHUNILAL of Ahemdabad, Jain Inhabitant, at present residing at Little Gibs Road, Malabar Hill, Bombay, do solemnly declare and say as follows :—

1. During December 1939, my late brother Kantilal Chunilal went to the village of Bijapur to visit Shree Vallabh Vijayji Maharaj for his Darshan. During his stay there, he attended the religious lecture of the said Shree Vallabh Vijaiji Maharaj. All the jains and many non-jains including the late Thakur

Jog Singhji of Bijapur were present at the said religious lecture. The said late Thakur was highly impressed by the religious lecture and offered to the said Vallabh Vijaiji Maharaj his services for the Hatundi Rata Mahavir Jain Temple at Bijapur. Thereupon Shree Vallabh Vijaiji Maharaj suggested to the late Thakur that there was necessity of vacant land surrounding the Mahavir Jain Temple for the purpose of Dharamshala and also a small piece of land for garden for the said temple. The late Thakur agreed to gift two pieces of land for the purpose of Dharamshala and garden etc. At the said time it was suggested that a Patta in respect of the said two pieces of land be made in my name for the token consideration of Rs. 1-4-0, and that I was to hold the said land for the benefit of the Jain Swetamber Murti Pujak Sangh of Bijapur for the purpose of constructing a Dharamshala, etc.

Accordingly on or about the 7th February, 1940 the patta of the said two pieces of land was issued in my name duly signed by the said Thakur Jogsinghji, Chief of Bijapur. By the said patta the said two pieces of land were conferred upon me absolutely for token consideration of Rs. 1-4-0 as the same was for charitable purposes.

The possession of the said land was handed over to the Jain Swetamber Murti Pujak Sangh of Bijapur and the Jain Sangh began construction work of compound etc. on the said two pieces of land near the Rata Mahavir Jain Temple and the management of the said land is being looked after by the said Jain Sangh.

I say that I have no personal interest in the said two pieces of land and that the same belong to the absolutely to Jain Swetamber Murti Pujak Sangh of Bijapur for the purpose of constructing buildings like Dharamshala, well and a garden etc. for Rata Mahavir Jain Temple at Hathundi, Bijapur.

The description of land comprised in the said Patta is as follows:—

(1) A piece of land admeasuring in width and length 4 bighas adjoining and in front of Mahavir Jain temple and back of Hanuman Temple to the extent of North front wing of old Dharamshala situated at Hathundi within the limits of Bijapur.

(2) A vacant piece of land on the river side and opposite the land described firstly, admeasuring in length and width 3 Bighas with a old Bavdi therein.

I further say that the said two pieces of land conferred upon me by the Late Thakur of Bijapur were

voluntary and made out of free will, pleasure and purely for charitable purposes for the benefit of the Jain Sangh of Bijapur for contructing Dharmshala and garden etc. I further say that I have no personal interest in the said two pieces of land and that same belongs to the Jain Swetamber Murti Pujak Sangh of Bijapur absolutely to the purpose of constructing buildings like Dharmshala, garden, wells, etc. for the benefit of the Jain Sangh visiting the temple for Darshan and such other purposes.

Solemnly declared
at Bombay
on the 9th day of Feb. 1946
Before me 50/-

Maneklal Chunilal

High Court,
Bombay.

आशीर्वचन—

卐

श्री सोहनलाल पटनी, प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय,
सिरोही का लिखा श्री हस्तिकुण्डी तीर्थ का इतिहास
देखा । लेखक उत्साही है एवं उसका विवेचन
सराहनीय है । हस्तिकुण्डी तीर्थ को मैंने
देखा है एवं लेखक के प्रयास से
मुझे प्रसन्नता हुई है ।
मैं पुस्तक की सफलता की कामना
करता हूँ ।

卐

(इतिहासवेत्ता पं. कल्याणविजयजी)
पूनमियागच्छ उपाश्रय
(आहोर) ६-१०-७२

शुभ-सन्देश

卐 ॐ अर्हन्नमः 卐

॥ वन्दे श्रीवीरमानंदम् वल्लभं सद्गुरुं सदा ॥

प्राकृतिक सुन्दरता से सुशोभित अरावली पर्वत का आभूषण रूप श्री हस्तिकुण्डी 'राता महावीर' जैन-समाज का प्राचीन तीर्थ व चमत्कारी स्थान है। दर्शन, सेवा, भक्ति करने वाले दर्शनार्थियों के मन को पवित्र बनाता है व आत्मकल्याण की दिशा में मानव को प्रेरणा देता है।

इस महान् तीर्थ-स्थान का दर्शन करने का सौभाग्य विहार के समय कई बार प्राप्त हुआ। मैं प्रो. पटनी के प्रयास से सन्तुष्ट हूं।

पहाड़ियों से घिरा हुआ यह महान् पवित्र तीर्थ गौड़वाड़ क्षेत्र को सुशोभित कर रहा है। यह पुनीत ध्यान-साधना के लिये शांत, एकांत स्थान है। आत्मशक्ति द्वारा ही मानव का कल्याण होता है। 'राता महावीर जी' के दर्शन करने से ही कर्मों की निर्जरा होती है एवं आत्मशांति प्राप्त होती है।

इस प्राचीन तीर्थ का जीर्णोद्धार कराने का श्रेय मेरे पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय गुरुदेव आचार्य भगवान् श्रीमद्विजयवल्लभसूरीश्वर जी महाराज को है। उसका मुझे भी गौरव है।

मेरी सदैव हार्दिक भावना रहती है कि भारत का जैन-समाज इस तीर्थ की यात्रा कर दर्शन, सेवा, भक्ति का लाभ उठाकर मनुष्य जीवन को लाभान्वित करे, लक्ष्मी का सदुपयोग कर तीर्थक्षेत्र को सुन्दर बनाने में पुण्य कमावे, यही मेरी जिनेश्वर देव से प्रार्थना है।

४२-पीपली बाजार, इन्दौर — विजयसमुद्रसूरि
आश्विन शुक्ल ६,
दिनांक १३-१०-७२

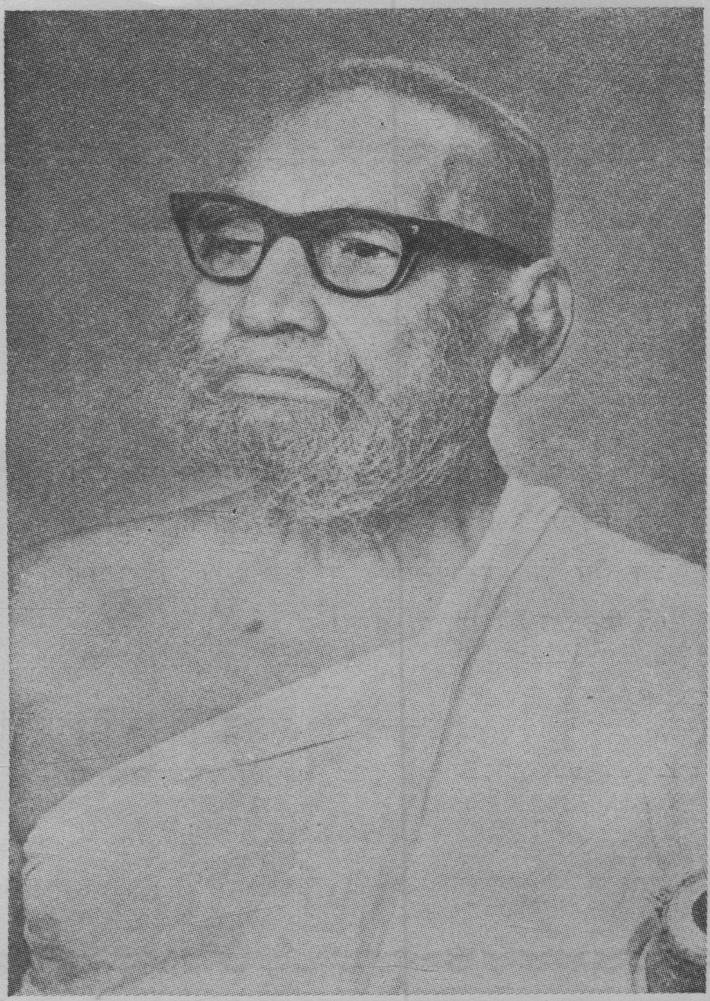

आचार्य श्री विजयसमुद्रसूरिजी महाराज

आशीर्वचन

✻

मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि श्री सोहनलाल पटनी का लिखा "श्री हस्तिकुण्डी तीर्थ का इतिहास" इस तीर्थ की प्रभावना में वृद्धि करे। मैं पुस्तक की सफलता की कामना करता हूँ।

—पू. पं० भद्रङ्करविजयजी गणिवर

२४-१०-७२

जैन उपाश्रय, लणावा

अध्यात्मयोगी पंन्यासप्रवर

प० पू० श्रीमद् भद्रंकरविजयजी गणिवर्य

शुभकामना

श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः

॥ श्रीमहावीरस्वामिने नमः ॥

श्री हत्थुंडी तीर्थ के विषय में प्रोफेसर सोहनलालजी पटनी ने बहुत ही अन्वेषण करके इतिहास लिखा है । श्री प्रभु महावीर स्वामीजी (राता महावीरजी) से विभूषित इस तीर्थ की उन्नति में और लोगों का भक्तिभाव बढ़ाने में यह इतिहास महत्त्व का साधन हो ।

श्री सोहनलालजी ऐसे अनेक ग्रंथ-रत्नों को तैयार करें और धर्म के प्रति लोगों की श्रद्धा-भक्ति बढ़ावें, यही शुभकामना है ।

—पूज्य गुरुदेव मुनिराज श्री भुवनविजयान्तेवासी
मुनि जम्बूविजय

बेड़ा

सं० २०२८ आश्विनशुक्ल–४

डॉ. सोहनलाल पटनी

लेखक परिचय :

जन्म तिथि : 29 जून, 1935

शिक्षा : एम.ए. (संस्कृत, हिंदी) बी.एड., पी-एच. डी.

भाषाविद् : पालि, संस्कृत, प्राकृत, मागधी, गुजराती, हिन्दी एवं अंग्रेजी

कार्यक्षेत्र : राजभाषा सम्पर्क अधिकारी, सिरोही जिला । *सदस्य*—प्राकृत विद्या विकास समिति, अहमदाबाद । *अध्यक्ष*—संवाद, सिरोही । *मानद-निदेशक*—अजितनाथ शोध संस्थान तथा आचार्य सुशील सूरि ज्ञान मन्दिर, सिरोही । *कार्यकारिणी सदस्य*—भारतीय रेडक्रास, सिरोही । *सदस्य*—जिला अस्पताल विकास समिति, सिरोही । *मेनेजिंग ट्रस्टी व संस्थापक*—सिरोही चेरिटेबल ट्रस्ट, सिरोही । *संस्थापक*—जैन रिलीफ सोसायटी, सिरोही । *आजीवन सदस्य*—भारतीय इतिहास परिषद् ।

सम्मान : 1967 में राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसन्धान परिषद्, दिल्ली द्वारा *'वर्तनी शिक्षा'* पर *राष्ट्रीय पुरस्कार* से पुरस्कृत । राजस्थानी युवा मंच, बम्बई द्वारा सन् 1977 में *'मरुधर गौरव'* की उपाधि से सम्मानित । सिरोही एवं जालौर जिलों के मद्रास प्रवासी राजस्थानियों द्वारा सन् 1978 में सम्मानित । सिरोही समाज, बम्बई द्वारा सन् 1981 में सार्वजनिक अभिनन्दन ।

कृतित्व : विविध विषयों से सम्बन्धित लगभग 30 *शोध निबन्ध* । *प्रकाशित पुस्तकें*—सिरोही दर्शन, हमारी हिन्दी, हस्तिकुण्डी का इतिहास, नामदेव कृष्णदास ग्रंथावली, जीरावल दर्शन, आबूक्षेत्र के आदिवासी, श्री अर्हद् गीता । *गुजराती से अनूदित पुस्तकें*—परमेष्ठी नमस्कार, महामंत्र की अनुप्रेक्षा, जैनधर्म परिचय, श्रीमद् राजचन्द्र जीवनकला । *प्रकाशनाधीन*—वसन्तगढ़ शैली की धातु प्रतिमाएँ, सिरोही चित्रशैली, वर्षा विज्ञान ।

विशेष : डॉ. पटनी के निजी संग्रहालय में 1300 से अधिक हस्तलिखित प्रतियां तथा सिरोही शैली की दुर्लभ छवियां (चित्र) संगृहीत हैं ।

सम्प्रति, डॉ. पटनी राजकीय महाविद्यालय सिरोही के हिन्दी विभाग में अध्यापनरत हैं ।

— प्रकाशक